चारुदत्त चरित्र

• सम्पादक •
उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रस्तुति: निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला

संस्करण : प्रथम - 1200 प्रतियाँ सन् 2007
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला : ग्रंथाक-134

ग्रंथ	:	**चारुदत्त चरित्र**
ग्रंथ प्रणेता	:	ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्त
पावन आशीष	:	प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री विद्यानन्द जी महाराज
सम्पादक	:	उपाध्याय मुनि निर्णय सागर
सहयोगी	:	मुनि श्री १०८ सत्य सागर जी महाराज ऐलक १०५ श्री विमुक्त सागर जी क्षुल्लक १०५ श्री विशंक सागर जी एवं समस्त त्यागी वृन्द
प्रकाशक	:	निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला समिति (पंजीकृत), दिल्ली
मूल्य	:	स्वाध्याय
ग्रंथ प्राप्ति स्थान	:	निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला, शाखा श्री दि. जैन ऋषभदेव मंदिर, ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
मुद्रक	:	अनिल कुमार जैन चन्द्रा कॉपी हाउस प्रा० लि० १४/१० हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ०प्र०) फोन: २४६३१९५

आद्य मिताक्षर

– अनगार निर्णय सागर

यह प्रथमानुयोग का लघु एवं अनुपम ग्रंथ है, इस ग्रंथ रूपी सम्यग्ज्ञान की प्रकाश किरण से अंतरंग में विद्यमान मिथ्यात्वादि अंधकार तिरोहित हो जाता है, जीवन में समता का भाव, संतोष वृत्ति एवं दुर्व्यसनों से मुक्त होने की अपूर्व ही प्रेरणा प्राप्त होती है। इस ग्रंथ में कथा नायक चारुदत्त हैं, यह उन्हीं का उत्तम चरित्र है , जो प्राणियों के जीवन में "चारु" = उत्तमता / श्रेष्ठता व सुन्दरता को देने में समर्थ, यथा नाम तथा गुण का धारक है। श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त का जीवन चारों पुरुषार्थों से समन्वित है, इस प्रकार के समन्वय युक्त, संघर्षशील व परम पुरुषार्थमय अन्य कथानायक जीवन चरित्र दुर्लभ हैं। इसकी विषय वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है।

अंग देश की चम्पा नगरी में राजा विमल वाहन, रानी विमल मती के न्याय पूर्वक संचालित राज्य में राजश्रेष्ठि भानुदत्त एवं देवल (सुभद्रा) सेठानी जी के सुमति नामक मुनिराज के उपदेश से , जिनभक्ति में संलग्न हो, चारुदत्त नामक पुत्र की प्राप्ति का कथन किया है, चारुदत्त जी की धर्म संस्कारों से युक्त होने से उनके द्वारा श्री मन्दर स्वामी जी आदि अनेकों महापुरुषों की निर्वाण स्थली मंदारगिरि की वंदना कथन है। तथा उन्होंने वन विहार के समय धूमसिंह के द्वारा सुकुमरिका का अपहरण करके, बंधन में डाले गये अमित वेग विद्याधर को कीलोत्पाटनी,संजीवनी एवं व्रण संरोहिणी गुटिकाओं से बन्धन मुक्त एवं स्वस्थ किया ।

धर्म की भावना से परिपूर्ण चारुदत्त का विवाह सेठ सिद्धार्थ (सर्वार्थ) व वसुमित्रा की पुत्री मित्रवती के साथ कर दिया जाता है, फिर भी चारुदत्त स्त्री सम्बन्धी विषयों से अलिप्त रह विद्याध्ययन में ही संलग्न रहते हैं क्योंकि उत्तम विद्या बिना ब्रह्मचर्य व्रत की साधना के असंभव है।

सुमित्रा के द्वारा मित्रवती की कुशल क्षेम पूछे जाने पर मित्रवती निज दुःख की कहानी अपनी माँ सुना देती है, जिससे सुमित्रा देवल को उसके लड़के (चारुदत्त) की विरक्ति की चर्या को धिक्कारती है, तथा उसे मूर्ख बताती है।

देवल ने अपने देवर से चारुदत्त को विषय भोगों में प्रेरित करने के लिए कहा, मोहवश, पूर्व षड़यंत्रानुसार रूद्रदत्त, चारुदत्त को वसंतमाला के ग्रह में ले जाते हैं। उस पुत्री वसंत तिलका के साथ-चौपड़ खेलते-खेलते ही वे उसमें आसक्त हो 12 वर्ष वहीं बिता देते है। पिताजी ने चारुदत्त को बुलवाने के लिए तीन बार अपने व्यक्तियों को भेजा। किन्तु विषयासक्त चारुदत्त ने स्पष्ट मना कर दिया तथा बारह वर्षों में 32 करोड़ स्वर्ण दीनारों का धनपति एक ही व्यसन से कंगाल हो गया।

इसी बीच भानुदत्त श्रेष्ठि जिन दीक्षा ले आत्म कल्याण के मार्ग मे प्रवृत्त हो जाते हैं चारुदत्त की पत्नी व माँ चरखा चला कर अपनी आजीविका चलाती हैं। तब वसंतमाला चारुदत्त के घर की निर्धनता की स्थिति जानकर उसे कम्बल में लपेट कर उसे विष्ठा गृह में डाल देती है, संसार की इस स्वार्थ परता, अविवेक पूर्ण क्रिया व मोह के इस नाटक को शतश: धिक्कार है।

चारुदत्त वहाँ से निकल कर अपने घर आते हैं अपनी माँ व पत्नी से मिल कर बहुत रोते हैं तथा किये पर बार-बार पश्चाताप करते हैं, अपनी पत्नी से क्षमा याचना करते हैं "हे देवि मुझ नीच दुष्ट पापी अधमात्मा को क्षमा कर दे" पत्नि भी चारुदत्त के सामने अश्रुपात करते हुए विनम्र शब्दों में कृत दोषों को भूलने का निवेदन करती हैं, इसका चित्रण बहुत ही सुन्दरतम तरीके से किया गया है।

बिना धन के गृहस्थ की कीमत दो कोड़ी की भी नहीं होती, अत: चारुदत्त धन कमाने हेतु विदेश जाना चाहते हैं, तब उनके ससुर उन्हें धन देना चाहते थे किन्तु स्वाभिमानी चारुदत्त उसे अस्वीकार करते हैं, वे ससुराल (दहेज) के धन पर नहीं अपने पुरुषार्थ से कमायें हुए धन पर ही विश्वास करते हैं कि स्व पुरुषार्थ से अर्जित धन ही सुख शंति में निमित्त बन सकता है। अत: उन्होंने विदेश गमन किया।

कपास के व्यापार हेतु जाने पर, डाकूओं ने सभी धन को लूटकर कपास में आग लगा दी। पुन: विदेश से धन कमाकर लौटते समय जहाज फट गया, स्वयं डूबते-डूबते बचे, यह स्थिति एक बार नहीं सात बार बनी। पुन: धन

कमाया, सम्पन्नता होने पर जिनालय का निर्माण व सत्पात्रों को दान दिया, आगे देव के द्वारा चारुदत्त के दान की परीक्षा हेतु मनुष्य की पसली की याचना करना, जिसमें चारुदत्त की सफलता का अच्छा चित्रण गया है।

मानव जीवन में पुण्य पाप नदी की तरंग या धूप छाया की तरह हैं स्थायी नहीं है। धन कमाकर लौटते समय विष्णु दत्त सन्यासी के जाल में स्वर्ण रसायन के लोभ में आकर कुँए में प्रवेश किया वहाँ धनदत्त से यथार्थ बात जानकर अपने प्राणों की रक्षा कर सके। मरणासन्न धनदत्त को पंच नमस्कार मंत्र सुनाया जिससे वह सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। इसके उपरान्त परम पुरुषार्थी चारुदत्त अपने चाचा रुद्रदत्त तथा अन्य मित्रों के साथ अर्थोपार्जन हेतु रत्न द्वीप गये । रुद्र दत्त ने बकरों का वध किया, 7 वें बकरे को मारते समय चारुदत्त जाग गया, उसने अपने चाचा रुद्र दत्त को खूब फटकारा, तथा मरणासन्न बकरे को णमोकार मंत्र सुनाया जिससे धनदत्त की तरह यह भी सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

इसके उपरान्त चारुदत्त आदि सातों पुरुषों की मसकों को भेरुण्ड पक्षीयों के द्वारा रत्न द्वीप ले जाना , चारुदत्त की मसक का पानी में 3 बार गिरना, तथा वहाँ पहुंचकर अमित वेग मुनिराज के दर्शनों व प्रवचन का लाभ होना, देवों द्वारा चारूदत्त की पूर्व में वंदना करने का कारण, तथा मुनिराज के (अमितगति विद्याधर के) पुत्रों द्वारा चारुदत्त सम्मान करने का अत्यंत रोचक ढंग से विवेचन किया है। ठीक ही है-"नहि कृत मुपकारं साधव: विस्मरन्ति" अमित वेग विद्याधर के पुत्रों सिंह ग्रीव व बराह ग्रीव द्वारा चारुदत्त को विपुल धन दिया जाना तथा देवों के द्वारा विद्याऐं देना इसका कथन किया गया है।

चारुदत्त अपनी पत्नियों सहित अंगदेश की चम्पापुर नगरी (जन्मभूमि) में अत्यंत वैभव के साथ प्रवेश करते हैं, वहाँ के राजा विमल वाहन को भेंट समर्पित करते हुए मिलते हैं, राजा विमल वाहन ने भी चारुदत्त को आधा राज्य दे दिया। गंधर्व सेना का वीणा वादन में जीतने की शर्त रखते हुए स्वयंवर किया, जिसमें वसुदेव कुमार वीणा वादन में विजय को प्राप्त हुए अत: गन्धर्व सेना को बड़ी धूमधाम के साथ वसुदवे के साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ। चारुदत्त ने दीर्घ काल तक अपनी 34 (चौंतीस) पत्नियों के साथ न्यायोचित

विषयभोगों का सेवन करते हुए श्रावकों के षडावश्यक कर्तव्यों के द्वारा धर्म कार्यों का भी सम्पादन किया।

अनन्तर किसी पुण्य निमित्त को पाकर, चारुदत्त ने वैराग्य भाव को प्राप्त हो, अपने "सुन्दर" नामक पुत्र को अपना श्रेष्टि पद सौंप कर दिगम्बरी जिन दीक्षा को अंगीकार किया। इस वैराग्य के उत्तम निमित्त को पाकर अनेकों राजाओं श्रेष्ठियों व सामान्य स्त्री पुरुषों ने भी जिन दीक्षा, श्रावक के व्रत व सम्यक्त्व आदि को प्राप्त किया। कठिनतम साधना करके श्रेष्ठि पुत्र चारुदत्त ने सर्वार्थ सिद्धि नामक स्वर्ग के सर्वोतम विमान को प्राप्त किया। अगले भव में वे नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगे। उनके साथ साधना करने वाले पुरुषों / मुनियों ने तथा आर्यिकाओं ने भी यथा योग्य सौधर्म से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक तथा विशिष्ट साधक मुनियों ने सर्वार्थ सिद्धि तक के विमानों को प्राप्त किया।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी मुनि श्री सत्य सागर जी, ऐ. श्री विमुक्त सागर जी, क्षु. श्री विशंक सागर जी को समाधिरस्तु आशीर्वाद, प्रकाशक निर्ग्रंथ ग्रंथमाला एवं मुद्रक श्री अनिल कुमार जैन चन्द्रा कॉपी हाउस प्रा. लि. व पुण्यार्जक श्रावक श्री सुरेन्द्र कुमार जी कृष्णा नगर (दिल्ली) को सपरिवार धर्म वृद्धि आशीर्वाद। सम्पादन कार्य में मुझ अल्पज्ञ द्वारा हुई त्रुटियों को क्षमा करते हुए हमें संकेत देने का कष्ट करें जिससे आगामी प्रकाशन में सुधार किया जा सके। तथा सुधी पाठकगण संशोधन करके ही पढ़ें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
संयमानुरागी जिनभक्त
20.02.2001 अहिच्छत्र

देहरा तिजारा (अलवर, राज.) में
१००८ श्री चन्द्रप्रभ भगवान
की स्वर्ण जयंती (५०वीं प्रकट तिथि)
के पुनीत अवसर पर प्रकाशित
ग्रंथाक — ३४

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

चारुदत्त चरित्र

पुण्यार्जक श्रावक

श्री सुरेन्द्र कुमार जैन

सुधांशु जैन

कृष्णा नगर, दिल्ली

चाहे भले ही मिले न भोजन, नहिं मिले पीने पानी।
वसन, सदन न मिले भले ही, नहि श्रवण गम्य हो मधु वाणी॥
ज्यों नीर-क्षीर का भेद बताती, त्यों देह जीव का ज्ञान सखे।
औषधि सम निरोगी बनाती, वरदा माता कल्याणी॥

प० पू० उपाध्याय श्री १०८ निर्णय सागर जी महाराज द्वारा रचित, संपादित एवं निर्ग्रंथ ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित उपयोगी साहित्य

१. निज अवलोकन
२. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
३. हमारे आदर्श
४. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
५. नंगानंग कुमार चरित्र
६. धम्म रसायणं
७. मौनव्रत कथा
८. सुदर्शन चरित्र
९. प्रभंजन चरित्र
१०. सुरसुन्दरी चरित्र
११. जिन श्रमण भारती
१२. सर्वोदय नैतिक धर्म
१३. चारुदत्त चरित्र
१४. करकण्डु चरित्र
१५. रयणसार
१६. नागकुमार चरित्र
१७. सीता चरित्र
१८. योगामृत
१९. मीठे प्रवचन
२०. आध्यात्म तरंगिणी
२१. सप्त व्यसन चरित्र
२२. वीर वर्धमान चरित्र
२३. स्वप्न फल विचार
२४. भद्रबाहु चरित्र
२५. हनुमान चरित्र
२६. महापुराण
२७. कल्याणी
२८. योगसार प्राभृत
२९. ध्यानसूत्राणि
३०. भव्य प्रमोद
३१. सदार्चन सुमन
३२. तत्वार्थ सार
३३. कल्याणकारक
३४. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
३५. आराधना सार
३६. यशोधर चरित्र
३७. व्रतकथा संग्रह
३८. तनाव से मुक्ति
३९. उपासकाध्ययन
४०. सुभाषित रत्न संदोह
४१. राम चरित्र
४२. हरिवंश कथा
४३. नीतिसार समुच्चय
४४. आराधना कथा कोश
४५. क्षत्रचूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)
४६. तत्वार्थसूत्र संसिद्धि
४७. दशामृत
४८. सिन्दूर प्रकरण
४९. प्रबोध सार
५०. शान्तिनाथ पुराण
५१. तनाव से मुक्ति
५२. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
५३. सम्यक्त्व कौमुदी
५४. धर्मामृत
५५. कर्म विपाक
५६. पुण्य वर्द्धक
५७. पुण्यास्रव कथा कोश
५८. धर्म परीक्षा
५९. चौंतीस स्थान दर्शन
६०. अमरसेन चरित्र
६१. सार समुच्चय
६२. दान के अचिन्त्य प्रभाव
६३. पुराण सार संग्रह
६४. प्रद्युम्न चरित्र
६५. आहार दान
६६. सुलोचना चरित्र
६७. गौतम स्वामी चरित्र
६८. महीपाल चरित्र
६९. जिनदत्त चरित्र
७०. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
७१. चेलना चरित्र
७२. धन्यकुमार चरित्र
७३. सुकुमाल चरित्र
७४. कुरल काव्य
७५. धर्म संस्कार भाग-१,२
७६. प्रकृति समुत्कीर्तन
७७. भगवती आराधना
७८. निर्ग्रंथ आराधना
७९. निर्ग्रंथ भक्ति
८०. कर्मप्रकृति
८१. पूजा-अर्चना
८२. नौ-निधि
८३. पंचरत्न
८४. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
८५. भावत्रयफल प्रदर्शी
८६. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
८७. तत्त्वार्थ सूत्र
८८. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
८९. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
९०. धर्मः क्या, क्यों कैसे?
९१. स्वाति की बूँद
९२. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
९३. सीप का मोती (महावीर जयन्ती प्रवचन)
९४. निश भोजन त्यागः क्यों?
९५. सच्चे सुख का मार्ग
९६. जिनदर्शन से निजदर्शन
९७. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
९८. अन्तर्यात्रा
९९. पंचपरमेष्ठी विधान
१००. श्री शांतिनाथ, भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
१०१. मेरा संदेशा
१०२. धर्मबोध संस्कार १,२,३,४
१०३. सप्त अभिशाप

[redacted]

–:: मंगलाचरण ::–

सर्वेषां वेधसामाद्यमादिमं परमेष्ठिनम्।
देवाधिदेवं सर्वज्ञं श्रीवीर प्रणिदध्महे।।

मैं उन महावीर स्वामी के चरणों में नमस्कार करता हूँ जो सभी दुख समूह को हरने वाले हैं, तथा जो जगत के तरणतारण हैं और महा सुख के कारण हैं। उन्हीं भगवान महावीर स्वामी ने जगत में धर्म का प्रकाश किया और संसार के भ्रम को दूर किया जिससे अपूर्व सुख की प्राप्ति हुई। उन्हीं के निमित्त से अनेक जीव धर्म के मर्म को पहिचान कर और कर्म को नाश करके मोक्ष गये हैं। इस प्रकार श्री महावीर स्वामी को नमस्कार करके चौबीस तीर्थंकरों को भी नमस्कार करता हूँ और श्री चारुदत्त चरित्र को प्रारम्भ करता हूँ।

मध्य लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों के बीच में एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप है। उसे चारों ओर से घेरे हुये लवण समुद्र है, जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत्, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत नाम के सात क्षेत्र हैं। इस भरत क्षेत्र में भी छह खण्ड हैं और उनमें से आर्यखंड प्रधान एवं महिमामय है। इस आर्यखण्ड में चौथा काल होता है तब त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं। इस आर्यखण्ड में जब अनेक मनोहर देश हैं। उन्हीं में से एक अंग देश में चम्पापुरी नगरी है। उसकी शोभा स्वर्गपुरी समान है।

कथा का आरंभ

जिस समय की यह कथा है उस समय चम्पानगरी की शोभा एवं महिमा अवर्णनीय थी। नगरी की शोभा गढ़, खाई, कोट और विशाल दरवाजों से और भी बढ़ गई थी। वहाँ के वन, उपवन तालाब आदि देखकर मन हर्षोन्मत्त हो जाता था। वहाँ के सभी लोग जैन धर्म के धारण करने वाले थे और प्रति दिन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दानादि करते थे। सभी लोग गुणियों से प्रेम करते थे। सारा नगर धन धान्यादि से पूर्ण था और वहाँ कोई दीन दुखी नहीं था। घर घर में आनन्द मंगल होता था, सभी भोग विलास में लीन और सुखी थे। प्रत्येक घर में शास्त्रों का पठन पाठन होता था। कोई सामुद्रिक शास्त्र वेत्ता थे तो कोई अपूर्व वैय्याकरण, कोई विविध विद्याओं के ज्ञाता थे तो कोई संगीत कला के जानकार। कहीं गायन मंडलियाँ बैठती थीं तो कहीं तमाशे और कीर्तन होते थे। इस प्रकार सर्वत्र आनन्द व्याप्त हो रहा था।

वहाँ के बाजारों की शोभा अपूर्व एवं अकथनीय थी। कोई हीरा मोती और मणियों की दुकानें थी तो कोई रत्नजड़ित आभूषणों की। कोई मेवा मिष्ठान की दुकानें थीं तो कोई आनंदकारी विविध वस्तुओं की।

वहाँ के गगनचुम्बी विशाल भवन तोरण आदि से बहुत ही सुशोभित होते थे। वे भवन सात खण्डवाले एवं कलामय थे। उनकी शोभा देखकर यही मालूम होता था कि यह स्वर्गपुरी का टुकड़ा ही है। उन महलों के प्रवेश द्वारों की चित्रकला देखते ही बनती थी। वहाँ सदा आनन्द उत्सव होते रहते थे।

कहीं कहीं विशाल जिनभवन शोभित हो रहे थे। उन पर स्वर्ण कलश शोभा देते थे। और शुभ्र ध्वजायें आकाश में उड़ रहीं थीं। उन मन्दिरों के भीतर रत्नमयी जिन प्रतिमायें विराजमान थीं। दर्शन करने वालों को ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि किसी इन्द्र का विमान ही हो। वहाँ सभी लोग जैन धर्म में सदा रत रहते थे और प्रतिदिन दान पूजादि में अपने द्रव्य का सदुपयोग करते थे।

चारों ओर सुन्दर तालाब थे और उनमें मनोहर कमल खिल रहे थे। वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होती थी और सर्वत्र फल फूल लगते थे। तात्पर्य

यह है कि वहाँ के निवासियों को भोग भूमि जैसा सुख था। उस चम्पापुरी के राजा विमलवाहन थे। * वह नीति में निपुण एवं प्रजा के लिये सुखकारी थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। उनकी विभूति का वर्णन नहीं हो सकता। उस राज्य में सभी आनन्द विनोद से रहते थे।

राजा विमलवाहन की रानी विमलमती समस्त गुणों की खान थी। वह चन्द्रवदन रूपकला युक्त थी। और उस मृगनयनी का सुन्दर शरीर स्वर्ण के समान दैदीप्यमान था। राजा विमलवाहन की यह रानी विमलमती ऐसी मालूम होती थी जैसे श्री रामचन्द्रजी की पत्नी सीता। उसके समान रूपवती अन्य स्त्री नहीं थी। रूप के साथ उसमें शीलादि गुण भी थे, जिससे वह महाराजा विमलवाहन को सदा अनुरंजित करती रहती थी। उसके हरिसिंह, गोमुख, वराहक, परतक और मरुभूत नाम के पाँच पुत्र थे। इन पाँचों ने शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या तथा क्षत्रियोचित सभी गुण प्राप्त कर लिये थे। इस प्रकार राजा सब प्रकार के सुखों में मग्न होकर काल यापन करता था।

उसी चंपानगरी में एक राज्यमान्य वणिक् भानुदत्त निवास करता था। वह हीरा, माणिक, मोती आदि का व्यापार करता था। राजसभा और राजभवन में उसका अच्छा मान था। उसकी पत्नी का नाम देवल था। ** वह सदा पति की आज्ञा में चलती थी और भानुदत्त को बहुत प्यारी थी। उसका सुन्दर रूप देखकर तो ऐसा मालूम होता था कि जैसे ब्रह्मा ने रतिरम्भा का नमूना ही बनाया हो! वह चन्द्रमुखी केवल अपने पति के साथ दिन दूना प्रेम बढ़ाती रहती थी।

उसके कपोल मण्डल की शोभा चन्द्र और सूर्य किरणों के समान थी, नासिका तोते के समान सुन्दर थी, वचन कोयल के समान मधुर थे, बाल भौरों के समान काले थे, मुख कमल जैसा सुन्दर था, आँखे मृग के समान मनोहर थीं, उठे हुये स्तनद्वय स्वर्णकलश जैसे मालूम होते थे, गहरी

---

* आराधना कथा कोश में राजा का नाम 'शूरसेन' लिखा है। यथा– "चम्पाख्ये नगरे राजा शूरसेनो महानभूत्।।" कथा 35।।

** हरिवंश पुराण में भानुदत्त की पत्नी का नाम 'सुभद्रा' लिखा है। यथाः– "भानुदत्त इति ख्यातः सुभद्रा तस्य भामिनी।" सर्ग ।।21–5।। आराधना कथा कोश में भी 'सुभद्र' लिखा है। यथा :– "भानुनामाभवच्छ्रेष्टी सुभद्र श्रेष्ठिनी प्रिया।"।। कथा 35–2।। श्रेताम्बर जैन कथा रत्नकोश में भी 'सुभद्रा' नाम लिखा है।

नाभि और पतली कमर बहुत सुन्दर मालूम होती थी। शरीर की कांति स्वर्ण समान मनोहर थी। तात्पर्य यह है कि वह ऐसी सुन्दर मालूम होती थी जैसे उसने रति की सुन्दरता छीनकर अपने में धारण कर ली हो। सुन्दरता के साथ ही केवल स्त्रियोचित सर्व गुणसम्पन्न थी। वह शीलवती एवं पतिभक्ता थी, साथ ही उस पर पति का अपूर्व प्रेम था। उन दोनों का स्नेह एवं अनुरूपता देखकर लोग आश्चर्य पूर्वक कहा करते थे कि दैव ने यह कैसा अच्छा संयोग मिलाया है।

पुत्र की इच्छा

किन्तु फूल में काँटा भी होता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण सांसारिक सुख युक्त यह दम्पति पुत्र के न होने से दुःखी थे। सेठानी देवल को संतान की तीव्र इच्छा थी, इसलिये वह पुत्र प्राप्ति के लिये यक्ष यक्षिणी तथा अन्य कुदेवों की पूजा किया करती थी। इस प्रकार कुदेवों की पूजा से भी जब सफलता नहीं हुई तब वह और भी दुःखी हो गई। सच तो यह है कि कुदेवों की पूजा स्तुति से भी क्या कहीं कार्य सिद्धि होती है?

एक दिन सुमति नाम के मुनिराज उसके मकान पर पधारे और उसे यक्ष यक्षिणी की पूजा करते देखा * तब मुनि महाराज ने देवल को सम्बोधित करके कहा कि हे पुत्री! तू कुदेवों को क्यों पूजती है? तब दोनों हाथ जोड़ मस्तक नमाकर देवल बोली– भगवन्! क्या करूं? पुत्र के न होने से मैं बहुत दुःखी हूँ। पुत्र की लालसा में मैं कुदेवों की पूजा करती हूँ। पुत्र प्राप्ति के लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। कहिये स्वामी! मेरे कब और कैसे पुत्र होगा या मैं योंही अपुत्रवती रहकर अपना जीवन पूरा कर दूंगी?

तब मुनिराज बोले– पुत्री! तू शोक का परित्याग कर, चिन्ताओं को छोड़ दे और धैर्य धारण कर विवेक से काम ले। क्या कभी कुदेवों की पूजा

---

* आराधना कथाकोष और हरिवंश पुराण में लिखा है कि सेठ और सेठानी ने जिनमन्दिर में मुनिराज के दर्शन करके वहीं पर पूछा था कि हमारे पुत्रोत्पत्ति होगी या नहीं? यथाः– एकदा श्री जिनेन्द्राणां मन्दिरे शर्ममन्दिरे। नत्वा चारणयोगीन्द्रं सा सुभद्रा जगाद च।। कथा 35–4।। अर्हदायतने पूजां कुर्वाणावन्यदा च तो। चारणश्रमणं दृष्ट्वा पुत्रोत्पत्तिम पृच्छतां।। हरि0 21–9।। इसमें चारण ऋद्धिधारी मुनि ने जिन पूजा करते समय बताया है।

से पुत्र की प्राप्ति होती है? कोई भी देव ऐसा नहीं है जिसकी पूजा मान्यता करने से पुत्र की प्राप्ति होती हो। यह तो कर्मोदय के आधीन है। यह जानकर तुझे प्रसन्नता होगी कि अब कुछ समय बाद तेरे एक पुत्र-रत्न होगा तू कुदेवों की पूजा मान्यता छोड़ दे। जो स्त्री पुरुष इस प्रकार अभीष्ट सिद्धि अभिलाषा से कुदेवों की पूजा करते हैं। वे अन्त में दुःख पाते हैं।

पुत्री! तुझे यह खबर नहीं है कि मिथ्या देवों की पूजा से सम्यक्त्व का नाश होता है, धर्म कर्म सब मिट जाता है और अभीष्ट सिद्धि भी नहीं होती है। तू विश्वास रख कि अपने पुण्य पाप के सिवाय और कोई भी देव किसी का कुछ सुधार या बिगाड़ नहीं कर सकता। जो लोग सम्यक्त्वहीन होकर मिथ्यात्व का सेवन करते हैं वे स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं करते और अन्त में नरक की यातनायें सहते हैं। जो अविवेकी मनुष्य सच्चे वीतरागी देव को छोड़कर कुदेवों के सामने मस्तक रगड़ा करते हैं, वे दुर्गति में जाते हैं। इसलिये तू मन, वचन, काय से श्री जिनेन्द्र भगवान की सेवा कर और जैनधर्म पर पक्का श्रद्धान कर, जो भवभव में सुख दाता है। तेरे पुण्य का उदय हुआ है, अब तुझे पुत्र की प्राप्ति अवश्य होगी।

मुनिराज के यह वचन सुनकर देवल बहुत प्रसन्न हुई। उसे मुनिराज के वचनों पर पूर्ण विश्वास हो गया और जैन धर्म पर अटल श्रद्धा जम गई। मुनिराज को उसने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तदुपरान्त मुनि महाराज वन की ओर विहार कर गये।

देवल ने मुनिराज के वचनों की विश्वास पूर्वक गाँठ बाँध ली और यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि पूर्वका सूर्य पश्चिम में भले ही उगे परन्तु मुनिराज के वचन असत्य नहीं हो सकते। इस प्रकार विश्वास जमाकर वह नित्यप्रति जिन पूजन करने लगी, व्रत उपवास करने लगी और दानादि देने लगी।

चारुदत्त का जन्म

इस प्रकार देवल के दिन आनन्द से व्यतीत होने लगे और कुछ समय बाद गर्भ धारण हुआ। गर्भ स्थिति जानकर देवल के आनन्द का पार नहीं रहा। धीरे-धीरे नव मास पूर्ण होने पर सम्पूर्ण लक्षणयुक्त पुत्र की प्राप्ति हुई।

सेठ और सेठानी के हर्ष का पार नहीं था। याचकों को दान दिया गया, मंगलाचार होने लगे, चारों तरफ से बधाइयाँ आने लगीं और सभी प्रकार के आनन्द उत्सव होने लगे। धीरे-धीरे बालक जब बारह दिन का हुआ तब श्रुत के ज्ञाता ज्योतिषी विद्वान बुलाये गये। उन्होंने उस पुत्र का नाम "चारुदत्त" रखा। धीरे-धीरे चारुदत्त दूज के चन्द्र समान बढ़ने लगा और देखते ही देखते आनन्द विनोद में सात वर्ष पूर्ण हो गये। तब माता पिता ने जिन मन्दिर में महोत्सव किया, याचकों को दान दिया और बालक को गुरु के पास पढ़ने को भेजा। * वहाँ वह विनयपूर्वक एकचित्त हो विद्याभ्यास करने लगा।

कुछ ही समय में उसने अनेक शास्त्र पढ़ लिये और मंत्र विद्याओं में निपुण हो गया। अलंकार, छन्द, व्याकरण, सामुद्रिक, तर्क, न्याय, नीति, ज्योतिष, गणित, संगीत, वैद्यक और शस्त्र आदि विद्याओं में निपुणता प्राप्त कर ली तथा जैन सिद्धान्त में पारंगत हो गया। इस प्रकार सर्व विद्या सम्पन्न होकर चारुदत्त राजपुत्रों के साथ क्रीड़ा किया करता था। राजपुत्रों का और चारुदत्त का परस्पर खूब ही स्नेह हो गया था। वह सदा जैन धर्म पर श्रद्धा रखकर पूजा, जप, दान और तीर्थवन्दनादि किया करता था। इस प्रकार आनन्द विनोद के साथ समय व्यतीत होने लगा। इसके बाद विचित्र घटना हुई जो इस प्रकार है -

चारुदत्त का वन विहार

चम्पापुरी नगरी के बाहर बहुत ऊँचा एवं शोभा युक्त एक पर्वत है ** उसका नाम मंदारगिरि है। उस पर जिन मन्दिर हैं। उसी पर्वत से श्री मन्दर मुनिराज आठ कर्मों को नाशकर मोक्ष गये हैं। इस लिये वह पवित्र भूमि पूजनीय है। वहाँ पर लोग यात्रा के निमित्त से जाते थे। वहाँ पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष में बड़ा भारी मेला लगता था। एक बार मेला

---

* हरिवंश पुराण में लिखा है कि चारुदत्त को बाल्यकाल में पंचाणुव्रत भी धारण कराये गये थे। यथा :- "कृताणुव्रतदीक्षच्य ग्राहितः सकलाः कलाः।।" सर्ग 21-12।।

** हरिवंश पुराण में यात्रा का जिक्र नहीं है। किन्तु इतना मात्र लिखा है कि चारुदत्त रत्नमालिनी नदी के तट पर घूमने गया और वहाँ वन में एक विद्याधर को वृक्ष पर लटका देखा।

का समय आया तब नगर में आनन्द छा गया और सभी लोग पूजादि का द्रव्य लेकर अपनी-अपनी सवारी पर सवार हो पर्वत की ओर चले। इस यात्रा में राजा से लेकर रंक तक सभी लोग गये। चारुदत्त भी उस मेले में गया था और वहाँ की यात्रा करके आनन्द प्राप्त किया।

चारुदत्त यात्रा करके अपने मित्र के साथ नीचे उतरा और दोनों नदी के किनारे घूमने के लिये निकल गये। थोड़ी दूर जाने पर एक बाग दिखाई दिया। उसे देखकर चारुदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। बाग के सभी वृक्ष फल फूलों से सुशोभित हो गये थे। उनकी शीतल छाया सुखकारी थी। कहीं नारियल के वृक्ष थे तो कहीं नारंगी लटक रही थीं, कहीं अमृतफल थे तो कहीं दाखें, बादामें, बेर, निम्बू और बिजौरा दिखाई देते थे। कहीं सुपारी, खजूर आदि लगे थे तो कहीं कदम, अनन्नास, आडू, आम, कटहर, बड़हर, अचार, केंथ, सदाफल, अतूत और अनार लग रहे थे। कहीं चम्पा, केतकी, राय, चमेली, गुलाब और गुलहर के फूल लगे थे तो कहीं कनैर फूल रही थी। इसी तरह और भी अनेक प्रकार के फलफूल उस बाग में लगे थे जिनकी गणना नहीं की जा सकती।

उसी के निकट एक सुन्दर सरोवर था, जिसकी शोभा का वर्णन करना कठिन है। वह तालाब जल से परिपूर्ण था। वहाँ कोयल मधुर शब्दों में कुहू-कुहू करती थीं। चकई, चकवा और चकोर पक्षी भी बीच-बीच में मधुर बोली बोलते थे। इस प्रकार वह बाग बहुत ही सुन्दर एवं मनमोहक हो रहा था। वहाँ पर श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त क्रीड़ा कर रहा था कि उसकी दृष्टि एक वृक्ष पर पड़ी। उस वृक्ष की एक शाखा में एक मनुष्य कीलित था। उसके शरीर में कीले ठुकने से वह मूर्छित हो गया था। उसे अपने तन मन की कुछ खबर नहीं थी। चारुदत्त यह दशा देखकर द्रवित हो गया और शीघ्र ही वह उस वृक्ष की शाखा पर चढ़ गया। और एक विमान देखकर चारुदत्त ने अनुमान किया कि यह कोई विद्याधर होना चाहिये, इसे मार डालने के लिये ही किसी ने इसे इस प्रकार कीलित किया है। अच्छा हुआ जो इसके प्राण अभी तक अटके हुये हैं। इस प्रकार विचार कर चारुदत्त ने उसे छुड़ाने का उपाय सोचा। विमान में देखने से उसे तीन गुटिकायें (औषधियाँ) मिली। उन गुटिकाओं के नाम कीलोत्पाटनी, संजीवनी और व्रण संरोहनी था।

उन गुटिकाओं को चारुदत्त ने हाथ में लिया और जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करके विद्याधर के शरीर पर कीलोत्पाटनी गुटिका लगाई। गुटिका के स्पर्श होते ही विद्याधर छूट गया। इसके बाद चारुदत्त ने उसे संजीवनी गुटिका लगाई, जिससे विद्याधर की मूर्छा दूर होकर चैतन्य आ गया। उसके बाद व्रणसंरोहनी गुटिका लगाते ही शरीर के घाव मिट गये * तब विद्याधर सचेत होकर उठा और चारुदत्त को देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।

विद्याधर की कथा

चारुदत्त ने विद्याधर से पूछा कि आप कौन हैं? आप के माता पिता का क्या नाम है? आपका निवास स्थान कहाँ है? आप यहाँ किस लिये आये थे और आपको इस कष्ट में किसने डाला है? तब विद्याधर बोला- विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में एक शिवमन्दिर नाम का नगर है। वह इतना सुन्दर है कि स्वर्गपुरी जैसा मालूम होता है। उसका राजा महेन्द्रदत्त ** है। उन्हीं का मैं पुत्र हूँ। मेरा नाम अमितवेग है। मैं अपने स्थान पर आनन्द पूर्वक निवास करता था। मेरा एक मित्र धूमशिखा विद्याधर है। वह भी विजयार्द्ध पर ही रहता है। हम दोनों का परस्पर अच्छा प्रेम था। प्रतिदिन हम आनन्द विनोद किया करते थे। एक दिन हम दोनों ने क्रीड़ा करने के लिये बाहर जाने का विचार किया और ध्वजापताका से युक्त सुन्दर विमान सजाया। उसमें हम दोनों ने बैठकर बड़े ही आनन्द विनोद के साथ आकाश में प्रयाण किया। विमान आकाश में उड़ रहा था और हम वहाँ से नगर की सुन्दरता देख रहे थे।

आखिरकार चलते-चलते हमारा विमान हेमगिरी पर्वत पर पहुँचा। वहाँ ऐसे मनोहर स्थान हैं कि जिनकी शोभा का कथन नहीं हो सकता। हम दोनों मित्रों ने वहाँ पर खूब आनन्द विनोद किया। वहाँ पर हमें एक क्षत्रिय

---

* हरिवंश पुराण में गुटिकाओं के नाम और उनके गुणों में कुछ अन्तर है। वहाँ इस प्रकार का वर्णन किया गया है कि वहाँ पर चालन, उत्कीलन और व्रण संरोहणी नाम की तीन दिव्य औषधियाँ ढाल के नीचे दबी हुई रखी थी। इशारा कर विद्याधर को चलाया, उत्कीलन से छुटाया और व्रणसंरोहण से घाव अच्छे किये।

** हरिवंश पुराण- में राजा का नाम महेन्द्र विक्रम, पुत्र का नाम अमितगति, और मित्रों का नाम धूमसिंह तथा गौरमुंड लिखा है।

*जातीय हरीय * नामक मनुष्य मिला। उसकी एक सुन्दर कन्या थी जो कि देवकन्या से भी अधिक रूपवती थी। उसका नाम सुरकुमारिका था। हम समझते हैं कि महिला मण्डल में उसके समान सुन्दर कोई अन्य स्त्री नहीं हो सकती। उसका शरीर कनकवर्ण, मनोहर था। चन्द्रमा के समान मुख और मृग के समान सुन्दर आँखे थीं। हंस के समान चाल तथा कोयल के समान मधुर वाणी थी। केहरि के समान कटि थी और तोते जैसी सुन्दर नाक थी।*

*तात्पर्य यह है कि वह सर्वांग सुन्दर थीं उसे देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ और मैं उसकी सुन्दर मूर्ति पर मोहित हो गया। कामदेव के बाणों से मेरा शरीर आकुल-व्याकुल हो उठा और यही विचार हुआ कि इस सुकुमारिका के साथ विवाह कर लूँ। तब मैंने उसके पिता से विनयपूर्वक उस कुमारिका की याचना की। उसका भी मेरे ऊपर अच्छा स्नेह था, इसलिये उसने मुझे तिलक कर दिया और बड़े ही ठाट-बाट से अपनी कन्या के साथ विवाह कर दिया। ** मैं उसे लिवाकर सानन्द विनोद करने लगा और बड़े ही प्रेमपूर्वक भोगोपभोग करते हुये काल यापन करने लगा।*

हम दोनों को इस प्रकार आनन्द विनोद करते देखकर हमारा मित्र धूमशिखा विद्याधर जला करता था। वह हमारी पत्नी के रूप पर मुग्ध था, उसे प्राप्त करने के लिये उस दुष्ट को दुर्बुद्धि सूझी।

उसने एक कपटजाल रचा और सुरकुमारिका को हरने का संकल्प किया। मैं उसके कपटजाल को नहीं समझ सका कि उसके मन में क्या दुष्टता भरी हुई है। होनहार बलवान होती है। तदनुसार दैव ने कुछ ऐसी ही रचना रची। एक दिन धूमशिखा मेरे मकान पर आया। उसे देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। बात ही बात में वन क्रीड़ा करने को बाहर जाने का निश्चय किया। तो मैंने एक सुन्दर विमान सजाया और अपनी पत्नी को तथा मित्र को साथ लेकर आकाश में उड़ गया।

** हरिवंश पुराण में हरीय की जगह 'हिण्यरोम' नाम का तपस्वी और उसकी कन्या का नाम 'सुकुमारिका' लिखा है।*

*** हरिवंश पुराण में भी लिखा है कि में उस कुमारिका पर मुग्ध होकर अपने घर लौट आया, फिर भी वह मेरे मन में वसी रही। जब मेरे पिताजी को यह बात मालुम हुई तब उनने तापसी से मेरे लिये कन्या को मांगा। तापसी ने उस कन्या का मेरे साथ विवाह कर दिया।*

उड़ते-उड़ते हम इस बाग में आये और अनेक प्रकार की क्रीड़ा की। मुझे प्रमाद अवस्था में पाकर उस दुष्ट धूमशिखा ने मुझे यहाँ इस प्रकार कीलित कर दिया। *

उस पापी को न तो कुछ दया आई और न यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसा करने से इसके प्राण बचेंगे या नहीं। यह बात भी दूर रही, मगर वह दुष्ट मेरी यह दशा करके उसी समय मेरी स्त्री को लेकर भाग गया। उस समय मेरी तो ऐसी हालत थी इसलिये मैं कुछ भी नहीं कर सका। और मैंने घोर दुःख सहन किये। मगर क्या किया जाय? यहाँ मेरा कोई शरण नहीं था किन्तु अन्त में मेरे सद्भाग्य से आप यहाँ आ निकले और आपके प्रसाद से मेरे प्राण बच गये। सचमुच ही मैंने आपकी कृपा से पुर्नजन्म प्राप्त किया है और अपूर्व सुख प्राप्त किया है। वास्तव में पूर्वकृत कर्म की रेखा को कोई नहीं मिटा सकता। हे धीर पुरुष! तुम दयालु हो और परोपकार के लिये सदा तत्पर रहने वाले हो। इतना कहकर वह विद्याधर हाथ जोड़कर नतमस्तक हो बोला- हे नाथ! अब मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिये। मैं जाकर उस दुष्ट से अपनी पत्नी को शीघ्र ही छुड़ाऊँगा और उसे दण्डित करके देश से बाहर निकाल दूँगा।

यों कहकर उस अमितवेग विद्याधर ने एक बार फिर से चारुदत्त को नमस्कार किया और बड़ी ही उमंग से विमान में बैठकर अपने नगर की ओर रवाना हो गया। वहाँ पहुँचकर उसने धूमशिखा को कैद कर लिया और अपनी स्त्री को छुड़ा लिया इसके बाद वह विद्याधर उसी समय चारुदत्त के पास आया और हाथ जोड़कर बोला- हे स्वामी! मेरी प्रार्थना सुनिये। मैं अपनी पत्नी को छुड़ाकर इस दुष्ट को आपके पास लाया हूँ। इस दुष्ट ने मुझे बहुत दुखी किया है। अब आप जो चाहें सो इसे दण्ड दीजिये। आपके प्रसाद से मेरे प्राण बचे हैं, इसलिये मैं तो आपका सेवक हूँ, आपका आज्ञाकारी हूँ और आप मेरे मालिक हैं, प्राणदाता हैं।

यह सुनकर चारुदत्त बोले- हे धीरवीर! ऐसी बातें मत करो। हमारा

** हरिवंश पुराण में तीनों का विमान में जाने का कोई जिक्र नहीं है। किन्तु उसमें यह लिखा है कि मैं इस नदी के पुलिन में रतिक्रीड़ा कर रहा था कि अचानक ही दुष्ट धूमसिंह भी आ पहुँचा और मुझे कीलित कर मेरी प्यारी पत्नी सुकुमारिका को लेकर चलता बना।*

तुम्हारा स्वामी सेवक का व्यवहार नहीं है किन्तु तुम मेरे भाई हो, यही मन में निश्चय समझो। यह आप मानें तो हमारा तो यह विचार है कि इस दुष्ट को अब छोड़ दिया जाय। इतना सुनते ही विद्याधर आनन्दित हुआ और उसे मुक्त कर दिया। इसके बाद अमितवेग विद्याधर चारुदत्त की आज्ञा पालन करके अपनी पत्नी सहित नगर को चला गया।

चारुदत्त अपने द्वारा यह शुभ कार्य हुआ देखकर बहुत आनन्दित हुये और फिर उस बाग से मित्र सहित अपने स्थान को चले गये। वहाँ जाकर अपने महलों में बड़े ही आनन्दपूर्वक कालयापन करने लगे।

चारुदत्त का विवाह

उसी नगर में एक सिद्धार्थ * नामक सेठ था। वह विपुल सम्पत्तिशाली था। वह देवल सेठानी का भाई और चारुदत्त का मामा था। उसकी स्त्री का नाम सुमित्रा था। वह जैसी रूपवती थी वैसी गुण एवं चातुर्ययुक्त भी थी। उसके एक पुत्री, जिसका नाम 'मित्रवती' था। वह सामुद्रिक शास्त्र के अनुकूल सभी शुभ लक्षणों से युक्त थी। रूप, लावण्य और गुणयुक्त मित्रवती ऐसी मालूम होती थी जैसे स्वर्ग की किन्नरी ही हो। जब वह यौवनवती हुई, तब उसके माता पिता को विवाह की चिन्ता हुई। माता पिता का कर्तव्य है कि वह पुत्री के अनुकूल वर की खोज करें, अच्छा कुल और अच्छा घर देखें और ऐसे ही अनुरूप वर के साथ विवाह करें। तदनुसार सिद्धार्थ सेठ ने विचार किया कि अपनी पुत्री मित्रवती चारुदत्त (अपने भानजे) को देनी चाहिये। ** उसका अच्छा कुल है, शुभ लक्षण है और अपनी बहिन का पुत्र (भानजा) है। इस प्रकार विचार करके चारुदत्त को टीका कर दिया और दोनों ओर से आनन्द मनाया गया। उसी समय ज्योतिर्विदों ने लग्न की घड़ी भी शोधी और विवाह का शुभ दिन निश्चित किया गया।

उसी समय से खूब आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा कहीं कामिनियाँ मंगल गान गाती थीं तो कहीं स्त्रियाँ चौक पूरती थीं। कहीं पर विवाह

---

* हरिवंश पुराण में 'सर्वार्थ' नाम है।

** पहिले भानजे के साथ अपनी लड़की का विवाह करने का बहुतायत से रिवाज था। यह प्रथा दक्षिण प्रान्त में अभी भी है।

सम्बन्धी व्यवहार-नेंग दस्तूर हो रहे थे तो वहीं विविध बाजे बज रहे थे। उस समय भेरी, झांझे, झालर, कंसाल, ढोल, मृदंग और बीन बाजों से सारा नगर शब्दायमान हो रहा था। एक ओर याचकों को दान दिया जाता था तो दूसरी ओर सज्जनों का सम्मान किया जाता था। इस प्रकार धूमधाम के साथ चारुदत्त ने कर कंकड़ और मोर- मुकुट आदि धारण करके बारात सहित विवाह के लिये प्रयाण किया। सिद्धार्थ सेठ के दरवाजे पर जब बारात पहुँची तब खूब आदर-सत्कार और आगवानी की गई।

वहाँ पर बहुत ही सुन्दर मण्डल और वेदी की रचना की गई थी जो अत्यन्त मनोहर थी। उस समय कामिनियाँ रस भरे कमनीय गीत गा रही थीं और सुन्दरियाँ वर कन्या का श्रृंगार कर रही थीं। वहीं पर विद्वान पंडित विवाह विधि के मंत्रोंच्चार कर रहे थे। इस प्रकार शास्त्रीय विधि से विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार वर को कन्या का दान दिया गया। और स्वर्णाभरण तथा वस्त्रादि से सम्मानित किया गया। इसके बाद विदा होकर चारुदत्त अपने मकान पर आये तब उनकी माता बहुत आनन्दित हुई और बधाई देकर खूब आनन्दोत्सव किया। सब कुटुम्बी और सम्बन्धीजन इस सुयोग्य सम्बन्ध को देखकर प्रसन्न हुये।

चारुदत्त की विरक्ति

शास्त्रव्यसनिनो मेऽभून्नात्मस्त्रीविषयेऽपि धीः।
शास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकम्।।

होनहार बलवान होता है। इतना उत्तम सम्बन्ध मिलने पर भी चारुदत्त को अपनी नवपरिणीता पत्नी पर स्नेह उत्पन्न नहीं हुआ। उसने आते ही उसका त्याग कर दिया! न उसकी वह खबर लेता था और न उसके पास ही कभी जाता था। वह बिचारी इस अकारण परित्याग से दुखी रहती थी। उसके पास मात्र एक दो सखियाँ ही रहती थीं, बाकी वह सूने एकान्त स्थान अपने दिन पूरे किया करती थी। वह न किसी से कुछ कहती थीं, न सुनती थीं, किन्तु चुपचाप विलाप किया करती थीं और अपने पूर्वोपार्जित कर्म को ही दोष दिया करती थी। अपने पति के वियोग से दुखी होकर

उसने सब श्रृंगार और ताम्बूलादि का भी त्याग कर दिया था। बेचारी लम्बी सांसें लेकर मस्तक धुना करती थीं और कहती थी कि हे विधाता! तूने यह क्या किया? यों कहकर दिन रात आँखों से आँसू बहाया करती थी और दुःख शोक में अपना काल यापन किया करती थी।

उधर चारुदत्त बड़े ही आनन्द प्रमोद से विद्याध्ययन कर रहे थे। उन्हें काव्य, पुराण, छन्द, व्याकरण और अलंकारादि शास्त्रों के पढ़ने का काफी शौक था, इसलिये वे इसी में मस्त रहते थे। वे न तो अपनी पत्नी की खबर लेते थे और न उन्हें कामवासना का ही विचार था।

एक बार दैवयोग से चारुदत्त की सास सुमित्रा अनायास ही चारुदत्त के मकान पर आई और अपनी पुत्री के स्थान पर गई। पुत्री ने माता को देखकर स्नेह व्यक्त किया और आदर-पूर्वक उच्च स्थान देकर कुशल समाचार पूछा। मगर मित्रवती की दीनहीन एवं दुखी अवस्था देखकर माता सुमित्रा अवाक् रह गई और कुछ भी न बोल सकी! किन्तु चिन्ता और विषादयुक्त होकर मित्रवती की ओर देखने लगी।

वह देखती है कि हमारी पुत्री अत्यन्त क्षीण शरीर हो गई है। शरीर पर मैले कुचैले वस्त्र पहिने हैं मुखचन्द्र मैला और दुखी दिखाई देता है। वह ऐसा लगता हैं जैसे चन्द्रमा काले बादलों से ढक गया हो। शरीर पर द्वादश प्रकार के आभूषण नहीं हैं। सोलह श्रृंगार और ताम्बूलादिका भी त्याग कर दिया है। यह सब देखकर अपनी पुत्री से सुमित्रा ने कहा- बेटी! यह तुझे क्या हो गया है? तूने ऐसा भेष क्यों बनाया है? क्या तेरे ऊपर पति का प्रेम नहीं है? या कोई दूसरी चिन्ता लगी है? तेरा यह मैला शरीर और मैले वस्त्र देखकर मुझे भारी दुःख हो रहा है। बेटी! सच सच बता, क्या कारण है? मुझसे कोई बात मत छुपा।

माता की बातें सुनकर मित्रवती ने संकोच से मुख नीचा कर लिया और जमीन कुरेदने लगी। वह कुछ कहना चाहती थी, मगर कह नहीं सकती थी। कहने के लिये बात ओठों तक आ जाती थी मगर मुँह नहीं खुलता था। तब सुमित्रा ने कहा- पुत्री! अपने सुख दुख की तमाम बातें मुझसे कहकर मेरे हृदय को शान्त कर। तू जानती है कि मुझे तेरे सुख में सुख और तेरे दुख में दुख है। तू निःसंकोच होकर कह दे कि तुझे ऐसा क्या दुःख है कि जिससे तेरी ऐसी हालत हो गई।

इस प्रकार माता का अन्यन्त आग्रह देखकर मित्रवती आँखे नीची करके बोली- जिस दिन तुमने मेरा विवाह किया और मैं जब से यहाँ आई हूँ तब से मेरे पति ने न तो मेरी सुध ली है और न मेरे साथ कोई बातचीत ही की है इतना ही नहीं किन्तु वह मेरे पास तक नहीं आते हैं। वे मुझे कभी याद भी नहीं करते और मैं इस मकान में अकेली पड़ी-पड़ी रोया करती हूँ। उन्हें तो मात्र दिन रात पढ़ना लिखना ही सूझता है, गृहस्थाश्रम या आनन्द विनोद का तो उन्हें कोई विचार ही नहीं आता। वे तो अपना विरक्त जीवन-सा बिता रहे हैं। उन्हें यह खबर हीं नहीं है कि पत्नी के प्रति पति का क्या कर्तव्य है? बस, मुझे यह दुख सालता है, कारण कि स्त्रियों को पति-वियोग जैसा दुःख दूसरा नहीं है। यही कारण है कि मैं सब सुध-बुध भूलकर इस प्रकार दुखी हो रही हूँ।

यह सब हाल सुनकर माता सुमित्रा ने मित्रवती से कहा- बेटी! तू इस प्रकार आकुल व्याकुल मत हो, विधि का विधान कोई नहीं मिटा सकता। जो होना होता है वह होकर ही रहता है। कुलवधुओं को तो कुल की रीति पर ही चलना चाहिये। जो नीच हैं वे नीच विचार करती हैं। इसलिये तू शान्तचित्त से जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण कर और उन्हीं के नाम की माला जपा कर। इस प्रकार अनेक तरह से पुत्री को समझा बुझाकर और अपने मन में अत्यन्त दुःखी होकर सुमित्रा वहाँ से उठी तथा मन में खूब क्रोध करती हुई मित्रवती की सास के पास गई। सुमित्रा को आई हुई देखकर चारुदत्त की माता ने यथोचित आदर- सत्कार किया और बैठने को उच्चासन दिया।

बैठते ही कुशल समाचार पूछने की बात तो दूर रही, सुमित्रा कहने लगी कि सेठानीजी! तुम्हारा पुत्र पढ़ा लिखा तो है, मगर उसे व्यावहारिक ज्ञान तनिक भी नहीं है, उसे न तो गृहस्थाश्रम का ही ज्ञान और न वह यह जानता है कि पति का पत्नी के प्रति क्या कर्तव्य है? वह पढ़ा लिखा होकर भी अज्ञान है! वह आज तक अपनी पत्नी के पास कभी नहीं गया है। तुम्हें तो यह पहले से ज्ञात था कि चारुदत्त की रूचि पढ़ने लिखने में ही है और कुछ नहीं जानता, तो फिर उसका विवाह ही क्या झख मारने को किया था? इस प्रकार क्रोधावेश में जो जी में आया सो कहा।

देवल ने यह सब कटु वचन चुपचाप सुन लिये और फिर बहुत नम्रता से प्रार्थना की तथा अपनी लघुता बताकर विविध वचनों से उसे शांत किया। उसके बाद सुमित्रा को आदर पूर्वक उसके घर पहुँचा दिया।

तदनन्तर चारुदत्त की माता बहुत दुखी हुई। उसे सुमित्रा का एक-एक वचन कांटे की तरह सालने लगा। उसने विचार किया कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे चारुदत्त सांसारिक बातों को भी समझने लगे। बहुत कुछ सोच विचार के बाद उसने चारुदत्त के काका रुद्रदत्त को अपने मकान पर बुलाया और उससे कहा कि आप कुछ चारुदत्त को समझाइये, उसे संसार की ओर झुकाइये, भोगविलास का भान कराइये और ऐसा प्रयत्न करिये कि जिससे वह अपने गृही कर्तव्य समझने लगे। मुझे और कोई चिन्ता नहीं है। चाहे जितना धन खर्च हो जावे। मगर इस कार्य की सिद्धि होना चाहिये * भावज के इस प्रकार वचन सुनकर रुददत्त ने अपने मन में विचार किया कि इसी नगर की

* इसके बाद हरिवंश पुराण में इस प्रकार कथन है- कदाचित् वेश्या वसन्तसेना का किसी नृत्यमण्डप में नृत्य हुआ। काका रुद्रदत्त के साथ मैं (चारुदत्त) भी वहाँ गया। मण्डप में साहित्य आदि कलाओं में पूर्ण निष्णात अनेक मनुष्य बैठे थे। मैं भी उनके मध्य में जाकर बैठ गया। वसन्तसेना उस समय सूची नाटक (सुइयों के अग्रभाग पर नाचना) प्रारम्भ करना चाहती थी, उसके पहले ही उसने बिना खिले हुये जाति पुष्पों को बिखेर दिया। और ते तत्काल ही गायन के प्रभाव से खिल गये। ये देख मण्डप में बैठे हुये लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। मुझे इस बात का पूर्ण ज्ञान था कि पुष्पों के खिलने से कौन सा राग होता है, इसलिये मैंने शीघ्र ही उसे मालाकार राग का इशारा कर दिया। वेश्या ने अंगुष्ट का अभिनय किया, लोगों ने फिर उसकी प्रशंसा की और मैंने नभमण्डल को साफ करने वाले नार्पित राग का इशारा किया। जब वह गौ और मक्षिका की कुक्षिका का अभिनय करने लगी तो और लोग तो पहिले ही की भांति वेश्या की प्रशंसा करने लगे किन्तु मैंने गोपाल राग का इशारा कर दिया। वेश्या वसन्तसेना हाव भाव कलाओं में पूर्ण पण्डिता थी, इसलिये उसने जब मेरा यह चातुर्य देखा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और अंगुली की आवाज कर मेरी प्रशंसा करने लगी। तथा अनुरागवश समस्त लोगों को छोड़ कर मेरे सामने आकर अति मनोहर नाच नाचने लगी। नृत्य समाप्त कर वेश्या वसन्तसेना अपने घर चली गई परन्तु मेरे उस चातुर्य से उसके ऊपर कामदेव ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इसलिये वह घर जाते ही अपनी माँ से बोली माँ! इस जन्म में सिवाय चारुदत्त के मेरी दूसरों के साथ संभोग न करने की प्रतिज्ञा है। कलिंग सेना ने मेरे काका रूद्रदत्त को समझाकर मुझे अपने घर बुलवाया और वसन्तसेना के साथ मेरा पाणिग्रहण कर दिया।

वसन्तमाला * नामकी एक वेश्या है, उसकी पुत्री वसन्तसेना बहुत ही रूपवती और गुणवती है। वह इतनी चतुर है कि अपने मंत्र तंत्र और चेष्टाओं आदि से चारुदत्त को क्षणभर में ही वश में कर लेगी। इसलिये उसके पास जाकर सारा हाल सुनाना चाहिये और उसे खूब द्रव्य देकर इस कार्य के लिये तैयार करना चाहिये। कारण कि :–

– यस्यार्थास्तस्य सा कांता, धनहार्यो ह्यसौ जनः। –

तात्पर्य यह है कि जिसके पास धन होता उन्हीं की वेश्या पत्नी बन जाती है।

यों विचार करके रुद्रदत्त वेश्या के पास गया और उससे कहा– मैं तेरे पास चारुदत्त को लाऊँगा, उसे तू किसी भी उपाय से अपने वश में करने का प्रयत्न करना। वह भोला लड़का कामकलाओं को बिल्कुल नहीं जानता इसलिये तू उसे सब सिखा देना यों कहकर वह अपने घर पर चला गया।

वेश्यागमन

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो–
र्विश्वासयन्ति पुरुष न तु विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन,
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः।।

एक दिन रुद्रदत्त ने चारुदत्त को बुलाया और नगर में घुमाने के लिये ले गया। घूमते–घूमते वे दोनों वेश्याओं की गली में पहुँचे। तब चारुदत्त ने कहा– इधर जाना या घूमना ठीक नहीं है। वेश्याओं के घर जाना या उधर घूमना तो कामीजनों का काम है, मैं अब आगे नहीं जाना चाहता। यों कहकर चारुदत्त वापिस अपने मकान को लौट आया।

इस कार्य में अपनी सफलता न देखकर रुद्रदत्त ने महावतों को बुलाया और उन्हें कुछ द्रव्य देकर कहा कि हम चारुदत्त को लेकर वेश्याओं के दरवाजे पर जाते हैं, इतने में तुम दोनों ओर से हाथियों को लाकर

* हरिवंश पुराण में 'कलिंगसेना' वेश्या और उसकी पुत्री 'वसन्तसेना' के नाम से कही गई है।

भिड़ा देना और खूब चिल्ला-चिल्लाकर कहना कि हाथी मतवाले हैं, खूनी हैं, दौड़ो-दौड़ो बचो-बचो इत्यादि। इस प्रकार समझाकर रुद्रदत्त चारुदत्त को साथ में लेकर फिर नगर घुमाने को ले चले। चलते-चलते वे दोनों वेश्यागृह के पास जा पहुँचे। इतने में दोनों ओर से दो हाथी दौड़ते हुये आये। महावत चिल्ला रहे थे कि भागो-भागो, हाथी मस्त और खूनी हैं, यह हमारे हाथ में नहीं हैं, इनने कई आदमियों को घायल कर डाला है। आगे जाने वालो! दौड़ो-दौड़ो अपने प्राण बचाओं!

चारुदत्त को उस समय भागने का कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया। मात्र प्राण रक्षा के लिये सामने वेश्या का घर ही दिखाई देता था। उधर रुद्रदत्त ने भी उसी में घुसने को कहाँ और दोनों वेश्या के घर में घुस गये। *

मकान में जाकर उन्हें कुछ शांति मिली और वे उसकी शोभा देखने लगे। वहाँ बड़े-बड़े विशाल कमरे थे, चारों ओर मनोहर तोरण बंधे थे, रत्नजटित दरवाजे शोभायमान हो रहे थे उनकी ज्योति से सारा मकान जगमगा रहा था। वहाँ अनेक प्रकार के रंग बिरंगे खम्भे लगे हुये थे। आंगन की शोभा तो देखते ही बनती थी। वहाँ की चित्रकला अनायास मन मोहित कर लेती थी। कहीं चीते का चित्र था तो कहीं मयूर, कोयल दिखाई देती थी। कहीं पर चौरासी आसनों के चित्र बने थे तो कहीं रागरंग दर्शक चित्राम शोभा दे रहे थे। कहीं कोमल बिछौना बिछे थे तो कहीं चन्दोवा और परदा टंगे हुये थे। तात्पर्य यह है कि उस मकान की शोभा देखकर लोग योंही मंत्र-मुग्ध से हो जाते थे। वह गणिका मन्दिर नगर में अद्वितीय था। ऐसा मकान नगर भर में और किसी का नहीं था।

वे दोनों शोभा देखते हुये आगे बढ़े और वेश्या के पास जा पहुँचे। वेश्या वसंतमाला ने उनका अच्छा आदर किया और थोड़ी बातचीत के उपरांत वह चौपड़ उठा लाई। तथा रुद्रदत्त के साथ खेलने लगी। उस खेल में रुद्रदत्त की कई बार बुरी तरह हार हुई, यह चारुदत्त से नहीं देखा गया। काका रुद्रदत्त का बार-बार हारते रहना। चारुदत्त ने रुद्रदत्त से कहा- यदि आप मुझे खेलने दें तो निश्चय से आपकी जीत हो, यह सुनकर वसंतमाला ने

* इस प्रकार का कोई कथन हरिवंश पुराण में नहीं है। वहाँ तो नृत्य के समय प्रेम होना बताया है, जो विशेष संगत प्रतीत होता है।

कहा कि यदि आप खेलना ही चाहते हैं तो हमारी सुन्दरी पुत्री वसंततिलका के साथ खेलो। मेरे साथ क्या खेलोगे? मैं तो वृद्धा हूँ और तुम हो सुन्दर गुणनिधान एवं यौवनवंत सुकुमार! तुम्हारी और वसंततिलका की जोड़ी खूब जँचेगी! जिस प्रकार तुम खेलने में चतुर हो उसी प्रकार हमारी कुमारिका वसंततिलका भी प्रवीण है।

इतना कहकर वसंतमाला ने वसंततिलका को बुलाया। उसे देखते ही चारुदत्त के मन में एक अपूर्व हिलोर उठी और वह उसे क्षणभर देखता ही रह गया। वह उसे देवांगना से भी अधिक सुन्दरी प्रतीत हो रही थी। उसके सुन्दर शरीर की शोभा का वर्णन करना बहुत कठिन है। उसकी आँखे फूले कमल जैसी सुन्दर थी और खञ्जन पक्षी तथा मछलियों को भी लज्जित करने वाली थीं। उसकी भौहें टेढ़े धनुष के समान मालूम पड़ती थीं और नाक तोते जैसी सुन्दर थीं। वह ऐसी मालूम होती थी जैसे काम का गढ़ ही रचा गया हो।

उसका मुख, चन्द्रमा जैसा सुन्दर और चमकते हुये दाँत बिजली जैसे मालूम होते थे। लाल ओष्ठ तो ऐसे सुन्दर लगते थे जैसे वे काम की बराबरी कर रहे हो और उसके उठे हुये कुच काम के निवास करने के लिये मंदर जैसे मालूम होते थे। उसकी अत्यन्त पतली कमर और सुन्दर जंघाये काम क्रीड़ा का स्थल मालूम होती थीं। उसके कोमल और लाल पैर मनमोहक थे और उसकी मंदगति मराल जैसी मालूम होती थी। उसकी भुजायें कोमल थीं और शरीर कृष था। तथा मोतियों से भरी हुई मांग बहुत सुन्दर मालूम होती थी। इतना ही नहीं किन्तु उसका शरीर कसूमी वस्त्र पहिनने से अत्यन्त दैदीप्यमान हो रहा था। उसने सोलह प्रकार के श्रृंगार किये थे और बारह प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित थी। इस प्रकार जब वह सुसज्जित होकर हंसती हुई मीठे वचन बोलती थी तब ऐसा मालूम होता था जैसे कोई कोयल ही बोल रही हो।

वह रात दिन आनन्द विलास में रहा करती थी और अनेक प्रकार के राग रंग में मस्त रहती थी। उस सुन्दरी के साथ जब चारुदत्त की आँखे मिली तब चारुदत्त विह्वल हो गया।

बसन्ततिलका से प्रेम

स्त्रियों हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।।

बसंततिलका विचारने लगी कि यह हमारे पुण्य ही का उदय समझना चाहिये कि जो हमारे घर पर कुंवर पधारे हैं। चारुदत्त ने भी उस पर मुग्ध होकर कुछ द्रव्य न्यौछावर कर दिया। बसन्ततिलका ने भी अवसर देखकर चौपड़ खेलना प्रारम्भ की। एक दो बाजी हो पाई थी कि चारुदत्त को प्यास लगी और उसने बसंततिलका से पानी मांगा। वेश्या ने मोहनचूर्ण डालकर श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त को पानी पिला दिया। उसे पीते ही वह विह्वल हो गया। इतना ही नहीं किन्तु वह कामबाण से पीड़ित होकर मोह के द्वारा विह्वल हो उठा। वेश्या ने भी उसे अपने वश में कर लिया और वह वेश्या के साथ रहने लगा।

सच बात तो यह है कि जो होनहार होता है वह होकर ही रहता है और विधि का विधान कोई नहीं बदल सकता। चारुदत्त उस समय से इस प्रकार वेश्यासक्त हो गया जैसे पतंगे दीप के पास जाकर अपना शरीर जलाया करते हैं। वह वेश्या के घर इस प्रकार लीन होकर रहने लगा कि उसे किसी प्रकार की सुध- बुध भी न रहीं। एक दिन चारुदत्त ने बसन्ततिलका से कहा कि मेरी सम्पत्ति असीम है, आभूषण इत्यादि की तो कोई गिनती ही नहीं है। तुझे जितना जो कुछ मंगवाना हो सो मेरे यहाँ से मंगवाले और खूब द्रव्य खरचो, खावो और मौज करो। यह सुनकर वेश्या बहुत प्रसन्न हुई और वह चारुदत्त के साथ आनन्द विनोद करने लगी। चारुदत्त वेश्या के वश में इस प्रकार हो गया जैसे जादूगर के वश में विषधर सर्प हो जाता है। इस प्रकार चारुदत्त वेश्या के साथ महलों में आनन्द पूर्वक काल यापन करने लगा।

इधर तो चारुदत्त बसंततिलका के साथ मौज में पड़ गया और उधर रुद्रदत्त उसे वैसी ही स्थिति में छोड़कर अपने स्थान को चला गया। चारुदत्त के पिता ने रुद्रदत्त को अकेला आया देखकर कहा- भाई! तुम मेरे पुत्र को कहाँ छोड़ आये हो? तब रुद्रदत्त ने कहा कि चारुदत्त वेश्या के यहाँ है। इसके अतिरिक्त आद्योपांत सब बातें कह सुनायी। यह सुनकर चारुदत्त के पिता को क्रोध आ गया और वे बोले- अरे दुष्ट! तूने यह क्या किया?

जानबूझकर अपने मस्तक पर यह पाप का घड़ा किस लिये रख लिया? क्या तू नहीं जानता कि वेश्या की संगति से नरक में जाना पड़ता है और वहाँ पर गर्म पुतलियों के साथ शरीर जलाया जाता है। क्या तुझे यह मालूम नहीं कि वेश्यायें भी तब तक प्रेम करती हैं जब तक उन्हें खूब धन दिया जाता है और उनके साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ायें की जाती हैं, किन्तु जब धन नहीं रहता है तब कामदेव जैसा रूपधारी मनुष्य भी वेश्या के घर पानी भरता है। इस प्रकार कहकर भानुदत्त मन ही मन पश्चाताप करने लगा और अपने भाग्य को दोष देने लगा।

उधर चारुदत्त द्वारा भेजी हुई वेश्या दासी भानुदत्त के यहाँ प्रतिदिन आने लगी और उन्हें समझाया करती थी कि मुझे चारुदत्त ने भेजा है और खर्च के लिये द्रव्य मंगवाते हैं। इसलिये अधिक द्रव्य दीजिये। भानुदत्त भी पुत्र-प्रेम के वशीभूत होकर वेश्यादासी को खूब धन बांध देता था इस प्रकार बहुत समय हो गया तब सेठ ने विचार किया कि चारुदत्त बुरे व्यसन में फँस गया है इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे वह अपने घर वापिस आ जाय। वह मोह से इतना विह्वल हो गया है कि उसे न तो कोई चिंता है और न अपने कुटुम्बीजनों का ही ख्याल रहा है, वह तो अपने राग रंग में फँसा हुआ है, इसलिये उसे किसी तरह से भी निकालना चाहिये। यों विचार करके भानुदत्त ने एक नौकर को बुलाया और उसे समझाकर कहा कि तुम चारुदत्त के पास जाओ और उसे समझा बुझाकर कहना कि भाई! अब अपने घर चलो, तुम्हारी माँ ने तुम्हें बुलाया है। तुम्हारे बिना सब लोग दुःखी हो रहे हैं और तुम्हारी चिंता में घर के सब आदमी बीमार हो गये हैं। और उसे हमारी तरफ से यह भी समझा देना कि भाई! मोह में इस प्रकार विह्वल मत बनो। मोह शुभ गति को नाश करने वाला है और कुगति का मानों खुला हुआ दरवाजा ही है। मोह के वशीभूत होने से कोई सिद्धि तो होती नहीं है प्रत्युत मोह के कारण शुभ ऋद्धियों का नाश हो जाता है। मोही जीव जीवन भर दुख सहता है और उसे सुख का अंश भी नहीं मिलता है।

मूर्ख प्राणी ही मोह के वशीभूत होते हैं। यह मोह ही तो सब पापों की जड़ है। इसलिये तुम इस मोह को छोड़ो और हे व्हस्यज्ञ! अपने घर चलो। इसके अतिरिक्त और भी जो तेरे मन में आवे वह सब समझाकर कहना। चाहे जो कुछ हो, किसी भी तरह समझा-बुझाकर उसे अपने घर ले आओ।

इस प्रकार भानुदत्त ने नौकर को समझाकर चारुदत्त के पास भेजा। नौकर वेश्या के घर पहुँचा और वहाँ चारुदत्त को नमस्कार कर सुन्दर शब्दों में इस प्रकार बोला कि 'हे कुमार! मैं आपका नौकर हूँ, मुझे सेठ भानुदत्त ने आपके पास भेजा है, उसने जो-जो बातें कही हैं उनको ध्यापूर्वक सुनिये और उन पर विचार कीजिये। आपको माताजी ने बुलाया है इसलिये जल्दी चलिये। आपके बिना घर के सब लोग बहुत दुखी हैं।

इस प्रकार जो-जो बातें भानुदत्त ने कहीं थी नौकर ने वे सब चारुदत्त से कहीं, परन्तु चारुदत्त यह सब सुनकर मौन ही रहे और उनने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। यह देखकर नौकर बहुत दुखी हुआ और उसने भानुदत्त के पास जाकर सब हाल समझाकर कहा कि चारुदत्त नहीं आते, वह बुलाने से नहीं बोलते तथा वे काम और मोह में अत्यन्त अनुरक्त हैं। नौकर की यह बात सुनकर सेठ को अपने हृदय में बहुत दुख हुआ।

चारुदत्त वेश्या के घर पर अत्यन्त प्रेम से सुखपूर्वक रहते, वेश्या उनके घर से खर्च मंगवाती थी और भानुदत्त भेज देते थे। जब इस प्रकार बहुत समय बीत गया और घर का द्रव्य कम होने लगा तब सेठ ने विचार किया कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे कुमार अपने घर लौट आवे। तब उनने उसी नौकर को बुलाकर कहा कि तुम अब फिर चारुदत्त के पास जाओ और उससे समझाकर कहो कि 'तुम्हारे पिता बहुत बीमार हैं, उनके शरीर में अत्यन्त पीड़ा है, उन्हें तृषित नेत्रों से तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा है, इसलिये इस माया को छोड़ शीघ्र चलो!' ऐसा समझाकर सेठ ने नौकर को कुमार के पास भेजा।

नौकर वेश्यागृह में चारुदत्त के पास गया और विनयपूर्वक बोला कि मुझे आपके पिताजी ने भेजा है। उन्हें भंयकर रोग ने आ घेरा है, इसलिये वे बहुत व्याकुल हो रहे हैं। वे आपको देखने के लिये अत्यन्त लालायित हैं इसलिये शीघ्र ही उनसे मिलने के लिये चलिये। इत्यादि बातें सुनकर चारुदत्त ने कहा कि मेरे जाने से क्या होगा? उनकी औषधि सुप्रसिद्ध राजवैद्यों से कराओ, अच्छे-अच्छे चिकित्सकों को बुलाओ और उन्हें मनवांछित धन दो, जिससे वे मन लगाकर दवा करें। इसी से पिताजी की तबियत अच्छी हो जायेगी। उनके इलाज कराने में जितना भी द्रव्य लगे, लगाओ, मैं स्वयं न

तो वहाँ आना चाहता हूँ और न आ ही सकता हूँ। इतना कहकर चारुदत्त चुप हो गये, और कोई जबाब नहीं दिया।

तब नौकर निराश होकर सेठ भानुदत्त के पास वापिस गया और चारुदत्त का सारा हाल कह सुनाया। रूद्रदत्त यह समाचार सुनकर विह्वल हो उठे और कुछ समय के लिये उनका शरीर सुन्न सा हो गया। वह कभी पश्चाताप करते थे तो कभी अपने दैव को दोष देते थे। इस प्रकार भानुदत्त चारुदत्त की स्थिति को विचारते हुये अपना दुःखी जीवन बिताने लगे।

थोड़े दिनों के बाद भानुदत्त चारुदत्त को देखने के लिये फिर लालयित हो उठे और अपने सेवक को बुलाकर कहा कि अबकी बार फिर चारुदत्त के पास जा और उससे समझाकर कहना कि तू अपने दुष्ट स्वभाव छोड़ दे, तुम्हारे पिता आज मर गये हैं, उनका अग्निसंस्कार तुम्हारे ही हाथों से होगा, इसलिये चलो और उनकी अन्तिम क्रिया कर आओ। इस प्रकार नौकर को समझाकर भेजा और कहा कि अब की बार किसी भी प्रकार चारुदत्त को अपने साथ बुलाकर ले आना।

नौकर चारुदत्त के पास गया और नमस्कार करके बोला कि कुमार! बड़े ही दुःख की बात है कि आज आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया है। इसलिये आप शीघ्र ही अपने घर चलिये और उनका अन्तिम संस्कार करिये। तथा अपना उत्तराधिकार सम्हालिये। यह सुनकर चारुदत्त ने कहा कि मैं घर नहीं चल सकता। तू ही घर जा और अगर तगर चन्दन कुमकुमादि सुगंधित बहुमूल्य द्रव्य लेकर तथा वेशकीमती वस्त्र उढ़ाकर सब कुटुम्बी परिवार के लोग मिलकर उनका अग्निसंस्कार कर देना। और सबसे कह देना कि चारुदत्त नहीं आ सकता।

यह सुनकर नौकर ने चारुदत्त को बहुत समझाया, मगर वह कहाँ मानने वाले थे? उन्होंने एक न सुनी। तब वह अपना सा मुँह लेकर वापिस लौट आया और भानुदत्त से कहा कि चारुदत्त का आना अशक्य है। आपकी कही हुई सब बातें मैंने उनसे कहीं और मैंने भी बहुत कुछ समझाया, मगर उनके ध्यान में एक भी बात नहीं आती यह कहकर चारुदत्त के द्वारा कही गई सब बातें भी ज्यों की त्यों सुना दी। यह सुनकर सेठ भानुदत्त को भारी दुःख हुआ, मानो वज्रप्रहार ही हो गया हो। वह रह रहकर पश्चाताप और विलाप करने लगे तथा उनका तन मन विह्वल हो उठा।

उधर चारुदत्त वेश्या के घर मनमाने भोगविलास करते थे और वेश्या-दासी प्रतिदिन चारुदत्त के घर से इच्छित धन ले जाया करती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे छह वर्ष हो गये इतने में भानुदत्त की आधी अर्थात् 16 करोड़ दीनार से भी अधिक सम्पत्ति स्वाहा हो गई। भानुदत्त को अपने लड़के की इस प्रकार व्यसन तत्परता देखकर भारी दुःख रहा करता था। एक दिन उनने विचार किया कि चारुदत्त मेरे लिये मात्र दुख का कारण हुआ है, अब उसका सुधरना अशक्य है इसलिये इस दुख से मुक्त होने के लिये मैं तो सबेरे ही दीक्षा ले लूंगा। न जाने आगे क्या कैसा होने वाला है? कर्मगति को कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े सुर, असुर, यक्ष, खगपति, नागेश, नरेश, नारायण, चक्रवर्ती आदि सभी कर्म के अनुसार नाचते हैं। जो कुछ दैव में लिखा है उसे कोई मिटा नहीं सकता। इस जीव के साथ बलवान् कर्म लगे हुये हैं, तदनुसार दुख सुख भोगना पड़ता है, उनका पिण्ड नहीं छूटता। कर्म के कारण ही यह जीव जगत में चक्कर लगा रहा है। इसलिये अब इनसे पिण्ड छुड़ाने के लिये जिन दीक्षा धारण करना चाहिये। यह संसार दुख का धाम है, इसमें चक्कर लगाते हुये जीव पार नहीं पाता। अब तो प्रातः काल ही जिन भगवान की शरण में जाकर दीक्षा लेना चाहिये।

यों विचार करके तत्काल ही अपनी पत्नी को बुलाया और उससे सब हाल कह सुनाया। उसके बाद पुत्रवधू को बुलाया और उससे हृदय खोलकर सब बातें कहीं। और कहा कि हे पुत्री! दृढ़तापूर्वक शील और संयम का पालन करना तथा श्राविकाओं के व्रत पालने में नित्य सावधानी रखना। मैं तो अब जिनेन्द्र भगवान की शरण में जाता हूँ और वहीं जिन दीक्षा लेकर जन्म, जरा, मरण का नाश करूंगा। चारुदत्त यदि धन मंगावे तो उसे देती रहना। 'सच है पुत्र का मोह भी बहुत बलवान होता है।'

इसके बाद भानुदत्त ने वन में जाकर एक मुनिराज के पास दीक्षा ले ली।

चारुदत्त की धन हानि

जानास्येव जघन्यातो वृत्तिर्यद्वित्तवान् प्रियः।
हेयः पीलितसारः स्यादिक्ष्वलक्तकवन्नरः।।

उधर चारुदत्त दिन रात राग रंग में मस्त रहते थे। उन्हें आगे पीछे की कुछ भी खबर नहीं थी। वह तो भोगविलास में मस्त होकर सब कुछ भूल गये थे। वेश्यादासी प्रतिदिन घर जाती थी और मनमाना धन ले आती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे छह वर्ष और हो गये। इतने में बाकी सोलह करोड़ का द्रव्य वेश्या सेवन में पूरा हो गया। इस प्रकार जब सब धन समाप्त हो गया तब जो बारह हजार सुवर्ण मुद्रिकायें थी वे भी समाप्त कर दीं। उसके बाद मकान गहने रख दिया। फिर भी वेश्यासक्त चारुदत्त की आँखे नहीं खुली। और अपनी पत्नी के गहनों पर नियत गई वह विचारी सुशीला गृहिणी अपने बहुमूल्य मोतियों के गहने कुछ दिन तक देती रहे और अपने कर्म को दोष देकर दुखी हो काल यापन करती रही।

एक दिन एक चतुर पड़ौसिन महिला ने आकर चारुदत्त की पत्नी से कहा कि बहिन! तुम्हारी स्थिति अब बहुत खराब हो गई है। अब तुम कुछ भी द्रव्य मत देना और उस वेश्यादासी को विनयपूर्वक समझाकर अपना सब हाल सुनाना। और उससे कहना कि मेरे पास अब कुछ भी नहीं रहा, सूत कातने पर जो कुछ प्राप्त होता है उसी से घर की गुजर चलती है। यह बात हो ही रही थी कि इतने में ही वेश्यादासी वहाँ आ पहुँची और बोली कि चारुदत्त ने मुझे द्रव्य लेने भेजा है, इसलिये अबकी बार अधिक धन दीजिये।

तब चारुदत्त की पत्नी मित्रवती ने उस दासी का आदर-सत्कार और अनुनय विनय करके कहा कि अब मेरे पास कुछ भी नहीं है चर्खा कातकर सूत बेचती हूँ और उससे अपना काम जैसे-तैसे चलाती हूँ। फिर भी यदि हमारे प्राणनाथ को आवश्यकता हो तो मैं अपना शरीर बेचकर भी उनकी इच्छा पूरी कर सकती हूँ। दासी यह बात सुनकर पिघल गई और मित्रवती की पतिभक्ति देखकर प्रसन्न हुई तथा बोली कि अब तुम मन में दुख मत करो, जो होना था सो हो गया। यों कहकर दासी चारुदत्त के पास गई और वेश्या के समक्ष ही चारुदत्त से कहा कि सेठजी! अब तो आपके यहाँ फूटी कौड़ी भी बाँकी नहीं है। वहाँ तो अब चर्खे पर गुजर चलती है। तुम्हारी माता और पत्नी भूखों मरती हैं। वे जैसे-तैसे अपने दिन पूरे कर रही हैं। मैं उनके दुख का वर्णन नहीं कर सकती। आपका मकान और तमाम सामान तक बिक गया है।

वेश्या यह समाचार सुनकर आश्चर्यचकित हो विचारने लगी कि इतनी विभूति अल्प समय में कहाँ विला गई? अब तो चारुदत्त बिलकुल धनहीन हो गया है। उसे अपने यहाँ रखने से अब क्या लाभ है? यों विचार कर बसंतमाला ने चारुदत्त से स्पष्ट कह दिया कि सेठजी अब आप अपने घर जाइये, आपके घर में लोग बहुत दुखी हैं। वहाँ अब द्रव्य तो रहा ही नहीं है, इसलिये हम आपका क्या करेंगी? जब आपका फिर अच्छा समय आवे, तब आप पुनः यहाँ आइयेगा।

चारुदत्त ने बसंतमाला की यह सब बातें चुपचाप सुन लीं, और विषका सा घूंट पीकर निरुत्तर हो बैठा रहा, और मन ही मन विचारने लगा कि धन के विनाश होने की मुझे विशेष चिन्ता नहीं है। क्योंकि यह तो भाग्यानुसार आता है और जाता है किन्तु दुख इस बात का है कि धनहीन होने पर स्नेह भी स्नेही छोड़ देते हैं। * फिर भी उसे घर की कोई चिन्ता नहीं थी। वह तो मात्र वेश्या-पुत्री बसन्ततिलका में तल्लीन था। उसे उसके सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था। बसन्ततिलका भी चारुदत्त को प्राणों से भी अधिक प्यारा समझती थी। और उसे एक पलभर के लिये भी नहीं छोड़ती थी। इस अटूट प्रेम को देखकर बसन्तमाला मन ही मन कुढ़ने लगी। और भीतर ही भीतर गालियाँ तक देने लगी। एक दिन उसने एकांत में बसन्ततिलका से कहा हे पुत्री! मेरी एक बात सुन! वेश्याओं की नीति है कि जो धनहीन हो गया हो उससे प्रीति छोड़कर किसी धनवान से प्रेम करना चाहिये। वेश्या-शास्त्र कहता है कि द्रव्यहीन पुरुष से समागम नहीं करना चाहिए। वेश्यायें तो धनवानों को भोगती हैं, वे धनहीनों की संगति कदापि नहीं करती। वेश्याओं की यही रीति है, इसलिये अब तू चारुदत्त से प्रेम करना छोड़ दे।

जिसके घर में द्रव्य के बिना सब लोग दुखी हो रहे हैं। और भूखे रहकर दिन बिता रहे हैं तथा जिनके यहाँ खाने पीने के लिये कुछ भी नहीं रहा है उससे तू प्रीति कर रही है, यह गणिकाओं की रीति के विरुद्ध है

---

* सत्यं न में विभवनाशकृतास्ति चिन्ता।
भाग्यक्रमेश हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्त मां दंहति नष्टवनाश्रयस्य,
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।

*इसलिये बेटी! अब तू चारुदत्त से प्रेम करना छोड़ दे, और उसे अपने घर जाने दे, जिससे वह अपने कुटुम्ब परिवार से मिले और अपने काम में लग जाय। इस प्रकार अनेक बातें कहकर बसन्ततिलका को समझाया। माता की तमाम बातें सुनकर वह मधुर वचनों से बोली कि माताजी! इस भव में तो मेरा पति चारुदत्त ही है, दूसरे सब भाई और पिता के समान हैं। मैं तो इस जीवन के लिये चारुदत्त को ही अपना स्वामी निश्चित कर चुकी हूँ। इसके सिवाय अन्य पुरुष कुबेर के समान भी धनवान क्यों न हों तो भी वह मेरे काम का नहीं है। माँ! जिसके घर से आई हुई करोड़ो दीनारों से तेरा घर भर गया उसी को तू त्याग कराना चाहती है? धर्म का परमोपदेष्टा है, महा उदार है, त्यागी है, भला मैं उसका कैसे त्याग कर सकती हूँ? **

यह उत्तर सुनकर बसन्तमाला का जी जल गया। और चिन्ता में पड़ गई तथा विचारने लगी कि इन दोनों का प्रेम बहुत गहरा है। इनकी प्रीति की रीति निराली है। इसे किसी प्रकार भी छुड़ाना चाहिये और चारुदत्त को अपने घर से निकालना चाहिये। इस प्रकार वह अनेक तरह से विचार करती थी और मन ही मन गालियाँ दिया करती थी।

एक दिन बसन्तमाला को एक उपाय सूझा और उसने चारुदत्त तथा बसन्ततिलका के भोजन में कोई मादक वस्तु मिला दी। दोनों ने आनन्द से भोजन किया और रात्रि को बेखबर होकर सो गये।

चारुदत्त का विष्टागृह में पतन

पक्षविकलश्र्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः सरश्च जलहीनं।
सर्पश्चोद्धतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च।।

जब दो घड़ी रात बीत गई तब बसन्तमाला ने उन्हें बेहोश स्थिति में पाया। यह देखकर वह मन ही मन खूब प्रसन्न हुई और सोचा कि अब मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया। यों विचार कर उसने चारुदत्त के सब आभरण

* कौमारं पतिर्मुज्झता चारुदत्त चिरोषितं।
कुबेरेणापि मे कार्य नश्वरेण परेण किं।।
कलापारमितस्यंव रूपातिशययोगिनः।
सद्धर्मदर्शिनो मेऽस्य स्यात्त्यागस्त्यागिनः कुतः।।

*उतार लिये और उसके हाथ पांव बांधकर उसे एक कम्बल में लपेटा और गठरी बांध दी। चारुदत्त तो नशे में चूर था इसलिये उसे कुछ भी खबर नहीं पड़ी। तब वेश्या बसन्तमाला ने उस गठरी को उठवाकर एक विष्टागृह में डलवा दी। **

उसने चारुदत्त को विष्टागृह में डालते हुये तनिक भी संकोच नहीं किया। विष्टागृह में पड़े-पड़े चारुदत्त ने जो कष्ट सहा उसे वही जानते थे या उसके ज्ञाता सर्वज्ञ हो सकते हैं। चारुदत्त का सारा शरीर बंधा हुआ था, इसलिये वह सुध आने पर भी नहीं उठ सकते थे। थोड़ी देर में उन्हें नशा के कारण फिर से तन्द्रा सी आ जाती थी। और कुछ समय बाद वह थोड़ा सा सिटपिटाने भी लगते थे।

इतने में एक सूकरी विष्टा खाने के लिये विष्टागृह में गई और चारुदत्त का मुँह चाटने लगी। चारुदत्त ने समझा की बसन्ततिलका ही मुझे आलिंगन कर रही है और मैं उसके महल में पड़ा हुआ हूँ। इसलिये मदमत्त चारुदत्त बोले कि बसन्ततिलके! मुझे बहुत नींद आ रही है तू क्यों सताती है? अभी तू अलग हो जा और मैं जागूं तब बोलना। मोही एवं ज्ञान भ्रष्ट चारुदत्त इसी प्रकार बड़ी देर तक प्रलाप करते रहे। उन्हें अपनी दुर्दशा का तनिक भी भान नहीं था। वास्तव में कर्म की गति बड़ी विचित्र है। कहाँ तो वह गुणवान पुरुष और उसकी चतुराई तथा कहाँ उसका यह अपमान!

चारुदत्त वहाँ पड़े हुये अत्यन्त दुःख सहन कर रहे थे, फिर भी उन्हें बसन्ततिलका का ही ध्यान था। उन्हें और कुछ नहीं सूझता था, वह तो मात्र बसन्ततिलका का ही नाम रट रहे थे। इतने में उधर से नगर रक्षक एक कोतवाल निकला और उसने वह आवाज सुनी। आवाज के सुनते ही वह चौकन्ना सा हो गया और इधर उधर देखने लगा। थोड़ी देर में उसे मालूम हुआ कि पास के ही पाखाने में से किसी मनुष्य की आवाज आ रही है। यह निश्चय करके कोतवाल ने तुरन्त ही अपने सिपाही को बुलाया और कहा कि इस पाखाने में कोई आदमी मालूम होता है। तुम वहाँ जाओं और उसे वहाँ से ले जाओ।

** चारुदत्त को पाखाने में डालने की या आगे लिखी हुई कोई ऐसी बात हरिवंश पुराण या आराधना कथाकोश आदि में नहीं है। वहाँ तो मात्र घर से निकाल देने की बात लिखी है।*

सिपाही पाखाने में गया और वहाँ पर किसी आदमी को बन्धा हुआ पड़ा देखकर कहा कि तू कौन है? तेरा क्या नाम है? तू किस जगह का रहने वाला है? तेरे माँ बाप का क्या नाम है? तू रात को यहाँ पर क्यों और कैसे आया? तुझे इस प्रकार किसने बांधा है? और यहाँ पर कौन डाल गया है? तमाम हाल मुझसे कह दे, मैं तुझे यहाँ से छुड़ाकर यथेष्ठ स्थान पर पहुँचा दूंगा।

यह सुनकर चारुदत्त ने कहा कि मैं इसी नगर का रहने वाला हूँ। मेरे पिता का नाम भानुदत्त सेठ है और मेरा नाम चारुदत्त है। मुझे यहाँ पर वेश्या ने बेहोशी की स्थिति में डाला है। यह सुनकर सिपाही ने कोतवाल को सब हाल सुनाया। कोतवाल ने तुरन्त ही चारुदत्त को पहिचान लिया। और उसे उसी समय विष्टगृह से निकाल कर बन्धनमुक्त कर दिया। उसके बाद चारुदत्त को बहुत धिक्कारा और कहा कि तुम्हारे पिता तो बड़े ही धर्मात्मा सज्जन हैं, उनके तुम ऐसे कपूत पैदा हुये हो? सेठजी की 32 करोड़ दीनार की सम्पत्ति थी, वह तुमने कुकर्म में पड़कर स्वाहा कर दी और जन्मभर के लिये अपने सिर पर अपयश का टीका लगाया है।

इस कथा को लिखते हुये ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि हे सज्जनों! परस्त्री का त्याग करो। इस काम बुद्धि का त्याग कर कामदेव को वश में करो। ऐ मूर्ख प्राणी! इस लड़कपन को छोड़ दे। तेरे कुकृत्य को जानकर लोग हँसेंगे और तेरी मान प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी। इसलिये परस्त्री का त्याग कर। मैं हाहा करके विनती करता हूँ कि हे भाइयो! मेरी शिक्षा को ग्रहण करो। जो मूर्ख स्वस्त्री को छोड़कर परस्त्री या वेश्या सेवन करते हैं उनके जीवन को धिक्कार है। ऐ सज्जनो! जब यह पाप कथा प्रगट हो जाती है तब मान प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। इसलिये फिर भी मैं एक बार प्रार्थना करता हूँ कि परस्त्री और वेश्या का त्याग करो। जो मूर्ख अपना धन खोकर परस्त्री सेवन करेंगे उनकी चारुदत्त के समान दुर्गति होगी। और वे अन्त में महादुखदायी दुर्गति में जाँयगे।

चारुदत्त की दशा देखकर कोतवाल अपने मन में नाना प्रकार के विचार करने लगा और कर्मों को दोष देने लगा। तथा कहने लगा कि तकदीर की लकीर को कोई नहीं मिटा सकता जो कुछ भाग्य में वदा होता है वह होकर ही रहता है। कभी राजा अपने दलबल सहित हाथियों पर

सवारी करके सुखपूर्वक विहार करते हैं और कभी वे ही भाग्य का फेर होने पर रंक दशा में दाने दाने को मुहताज होकर भीख मांगते फिरते हैं। कभी यह जीव इन्द्रिय-सुख में मग्न रहता है तो कभी उसके परिणामस्वरूप नरकों में महान दुख भोगता हैं। तात्पर्य यह है कि विधि का विधान अमिट है कर्म जो करता है वह होकर ही रहता है। स्वर्गलोक मध्यलोक या पाताल लोक कहीं भी ढूँढ़कर देखो तो मालूम होगा कि कर्म के समान बलवान दूसरा कोई नहीं है।

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर कोतवाल अपने काम पर चला गया और चारुदत्त को उसके मकान पर भिजवा दिया।

चारुदत्त का गृहागमन

एतत्तु मां दहति यदगृहरुकदीयं।
क्षणार्थमत्यतथयः परिवर्जयन्ति।।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः।
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्।।

चारुदत्त अपने मकान पर गया और भीतर प्रवेश करने लगा। इतने में पहरेदार ने भीतर आने से रोका, जो उस सेठ की तरफ से नियत किया गया था जिसके वहाँ चारुदत्त का वह मकान गहने रख दिया गया था। चारुदत्त ने कहा कि तू मुझे क्यों रोकता है? यह तो सेठ भानुदत्त का मकान है। तब नौकर बोला हे भाई! यह तो गहने रख दिया गया है। यह सुनकर चारुदत्त को भारी दुःख हुआ। और काँपते हुये उस सिपाही से पूछा कि हमारी माता और पत्नी कहाँ रहती है? क्या तुम बताने की कृपा करोगे? तब उसे पहरेदार ने कहा कि आप घबरायें नहीं मेरे साथ आइये। यों कहकर वह चारुदत्त को उसकी माता और स्त्री के स्थान पर लिवा ले गया और एक झोंपड़ी दिखाकर कहा कि वे इसी में रहती हैं। * चारुदत्त झोंपड़ी के भीतर गये और माता के चरणों में जाकर लोट गये! वह लज्जा के मारे मानों धरती में पड़े थे और मन ही मन विचार करते थे कि दुःख

* हरिवंश पुराण में अपने मकान में जाने का ही कथन है। मकान बिकने और झोंपड़ी में रहने तथा सूत बेचने आदि की कोई बात नहीं है।

आने के बाद सुख का होना तो शोभता है, किन्तु सुखी होने के बाद जो दुखी दरिद्री हो जाता है वह जीता हुआ भी मरे के समान है। * दरिद्रता से मरण अच्छा है, कारण कि मरण में अल्प क्लेश होता है और दरिद्रता सदा दुख देती है। ** चारुदत्त की दीन हीन, मैली कुचैली दशा देखकर उनकी माता और स्त्री को भारी दुःख हुआ। बाद में माता ने चारुदत्त का उवटन करके स्नान कराया और अच्छे कपडे पहिनने को दिये। इसके बाद चारुदत्त माता के गले लग गये और फूट-फूट रोने लगे और अपनी निन्दा करने लगे। तथा बहुत विलाप करते हुए बोले कि माताजी! मैं बड़ा पापी हूँ, मूर्ख हूँ, दुष्ट हूँ, मैंने संसार भर में बदनामी कराई है।

इसके अतिरिक्त चारुदत्त ने अपनी माता से और भी सुख-दुख की सभी बातें कह सुनायी।

तब माता ने आँखों में आंसू भरकर कहा कि बेटा! तूने बत्तीस करोड़ दीनार की सम्पत्ति वेश्या के यहाँ गंवा दी और ऊपर से यह अपयश उठाना पड़ा। तथा तेरे पिताजी भी तेरे ही दुख से दुखी होकर चले गये हैं। यह सब दुख कथा सुनकर चारुदत्त बहुत दुखी हुए और फिर वह अपनी पत्नी के पास गये।

जब चारुदत्त से उनकी पत्नी मित्रवती मिली तब वह खूब रोई और अपनी तमाम दुख कहानी सुनाई। चारुदत्त भी सब बातें सुनकर बहुत दुखी हुये और बोले कि प्रिये! तुम गुणवती हो, शीलवती हो, धैर्यवती और अद्वितीय वल्लभा हो। किन्तु मैं पापों की खान, महान दुष्टात्मा हूँ। मैंने तुझे बहुत दुःख दिया है। तुझ जैसी सुशीला पत्नी को त्याग कर मैं वेश्या-व्यसनी बना और धर्म खोया। उसने मेरा तमाम धन खींच लिया और निर्धन होने पर उसकी माता ने मुझे विष्टागृह में डालकर बड़ी दुर्दशा की और नरकों से भी अधिक दुःख दिया। जब तक मेरे पास धन रहा तब तक

---

* सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।
धनांधकारेष्विव दीपदर्शनम्।।
सुखाचु यो याति नरो दरिद्रता।
धृतः शरीरणं मृतः स जीवति।।

** दारिद्रयामरणाद्वा, मरणं मम राचते न दारिद्रयम्।
अल्पक्लेश मरणं दारिद्रयमनन्तकं दुःखम्।।

वेश्या ने खूब प्रेम किया और धनहीन होने पर उसकी माता ने मेरा भारी अपमान किया है।

*सच है, भाग्य के क्षीण होने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। और जो सदा से प्रेम करते आते हैं वे भी प्रेम का त्याग कर देते हैं। *अस्तु, जो होना था सो हो चुका। जो भाग्य में लिखा होता है वह होकर ही रहता है संसार में कर्म महान् बलवान हैं, उन्हें कोई टाल नहीं सकता। ग्रन्थकार कहते हैं कि सूर्य पूर्व में उदय न होकर पश्चिम में उदय हो जावे, मेरु पर्वत पर कमल खिलने लगें, चन्द्रकला में अग्नि जलने लगे, समुद्र की थाह प्राप्त हो जावे, सर्प के मुख में अमृत प्राप्त हो जावे, अग्नि से रुई न जले, तात्पर्य यह है कि ये सब असंभव कार्य एक बार भले ही हो जावें, किन्तु करोड़ों उपाय करने पर भी विधि का विधान अन्यथा नहीं हो सकता। यथा–*

कबहूं रवि आन उगे दिश वारुन, सागर थाई किनी जु धरै।
मेरुपै फूल कदाचित अंबुज, इन्दुकलाहु में आग जरै।।
अमृत वास करै अहिके मुख, तूल हुतासन में जरै।
कोटि उपाय करो 'भारामल', करम लिखी कबहूं न टरै।।

सच बात तो यह है कि भले ही बुद्धिमान लोग लाखों उपाय करें किन्तु जो नहीं होना है, वह कभी हो नहीं सकता। और जो होनहार है, वह मिट नहीं सकती। मैंने पूर्व भव में जो कर्मबन्ध किया था, उसका यह फल भोगता हूँ अब मुझे फिर अपने भाग्य की परीक्षा करना है। मेरा विचार विदेश में निकल जाने का है। वहाँ पर डटकर व्यापार करूँगा और खूब द्रव्य कमाकर लाऊँगा। प्रिये! मैंने सबेरे ही विदेश प्रयाण करने का निश्चय कर लिया है।

यह सुनकर मित्रवती बोली कि पतिदेव! विदेशगमन की बात सुनकर मुझे भारी दुःख होता है। विदेश न जाकर अपने घर ही रहिये और यहीं पर छोटा मोटा व्यापार करिये। मैं भी प्रतिदिन सूत कांतूगी और उससे गुजारा चलांऊगी। मेरे सूत की आय से अपना खर्च भलीभांति चल सकेगा। इसलिये विदेश जाने का विचार छोड़ दीजिये। यहीं पर साथ ही रहकर सुख–दुख से अपने दिन अच्छी

** यदा तु भाग्यक्षयपीड़िता दशां,*
नरः कृतान्तोहितां प्रपद्यते।
तदास्य मित्राण्यपि यान्तिमित्रतां,
चिरानुक्तोऽपि विरज्यते जनः।।

तरह कट जायेंगे। बाहर न जाने कैसे-कैसे सुख दुख पड़ेंगे। वहाँ कौन सहायक होगा? इसलिये हे नाथ! इस दासी की प्रार्थना को स्वीकार करिये। आप को अब उचित नहीं है कि आप मुझे यहाँ अकेली छोड़कर स्वयं परदेश चले जावें।

धन कमाने की चिन्ता

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीबितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति।।

चारुदत्त मित्रवती की बातें सुनकर बोले कि प्रिये! तुम ठीक कहती हो, किन्तु धन के बिना काम नहीं चल सकता। यहाँ रहकर धन कमाना अशक्य है। धन के बिना न तो मान सम्मान होता है और न कोई बात ही पूछता है। धन के बिना पूत कपूत कहलाता है और धन बिना विद्वान की भी कोई कीमत नहीं रहती। धन बिना सेवक सेवा नहीं करता। राजा भी धन के बिना मारा-मारा फिरता है। धन के बिना कोई भी काम नहीं हो सकता धनहीन की न तो कोई संगति करता है और न कोई आदरपूर्वक बुलाता ही है। जहाँ देखो वहीं निर्धन का अनादर होता है। यदि सच पूछा जाय तो निर्धनता एक प्रकार का छट्टा पाप ही है। * इसलिये मैं धन कमाने अवश्य जाऊँगा। यहाँ रहकर तो भूखों ही मरना होगा। विदेश जाकर द्रव्य कमाऊँगा और तब कुछ शांति मिलेगी।

यह सुनकर मित्रवती बोली कि मैं तो विशेष क्या कह सकती हूँ, किन्तु आप अपने काकाजी तथा माताजी की भी सलाह लीजिये और जैसा वे कहें सो करिये। चारुदत्त को यह सलाह अच्छी लगी, और वह माता के पास गये तथा विनयपूर्वक बोले कि माताजी! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं विदेश जाऊँ और वहाँ पर कुछ उद्योग करके धन कमाऊँ। कुछ द्रव्य होने पर ही काम चलेगा, इसलिये आप अपनी अनुमति दीजिये। यह सुनकर चारुदत्त की माता को बहुत दुख हुआ और बोली कि बेटा! तू यह क्या कह रहा है? यह अयोग्य बात सुनकर तो मुझे भारी दुख हो रहा है। तू अब ऐसी बातें मत कर। मेरे लाल! विदेश में क्या धरा है? जो कुछ भी उद्यम बन सके

* संग नेव कि कश्चिदस्य कुरुते, संभाषते नादरा-
त्संप्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोकते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छो लज्जया,
दन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठ महापातकम्।।

सो अपने देश में रहकर ही करो। तू बारह वर्ष बाद मिला है, इसलिये मैं तुझे देखकर अपने सब दुख भूल गई हूँ। तेरी कुशलता में ही मुझे आनन्द है। इसलिये यहीं मेरी आँखों के सामने रहकर उद्योग-धन्धा कर। बाहर जाना किसी भी तरह योग्य नहीं है।

तब चारुदत्त बोले कि माताजी! मैंने बहुत अपयश सहा है और घर में द्रव्य भी नहीं रहा, इसलिये अब मुझसे मुँह नहीं दिखाया जाता। मैं नगर में क्या मुँह लेकर फिरूँगा? अब कौन विश्वास करेगा? मुझे तो सभी लोग तूल के समान तुच्छ समझेंगे। दरिद्रता सर्वत्र शंका का स्थान बन जाती है। * इसलिये विदेश जाकर जब मैं अच्छा धन कमाकर लाऊँगा तभी घर में प्रवेश करूँगा। आप विश्वास रखिये कि मैं धन कमाकर शीघ्र ही आपकी सेवा में वापिस लौटूँगा।

इस प्रकार चारुदत्त ने अपनी माता को अनेक प्रकार से समझाकर निरुत्तर कर दिया। देवल ने भी जब चारुदत्त का दृढ़ निश्चय जाना तब उसने भाई को बुलाया और उससे कहा कि भाई! मैंने चारुदत्त को बहुत समझाया, मगर वह अपने परदेशगमन के निश्चय को नहीं छोड़ता है। तेरा तो यह जमाई है, जब तू भी इसे कुछ समझावे तो अच्छा है। सम्भव है कि तेरे कहने सुनने से यह मान जावे। यह सुनकर सिद्धार्थ ने चारुदत्त से कहा कि कुमार! परदेश में जाने से क्या लाभ है? तुम्हें जितने धन की आवश्यकता हो मैं देने को तैयार हूँ। मेरी सोलह करोड़ की सम्पत्ति है। बोलो, तुम्हें कितना धन चाहिये? यथेच्छ द्रव्य लेकर तुम यहीं पर मन लगाकर व्यापार करो और जब तुम्हारे पास पर्याप्त धन हो जाय तब मेरा रुपया मुझे दे देना।

यह सुनकर चारुदत्त बोले के मेरा दृढ़ निश्चय नहीं टल सकता। मुझे अब यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता। परदेश में जाकर भलीभांति उद्यम करूंगा और उद्यम से ही द्रव्य कमाऊँगा। उद्यम से ही धन मिलता है और उद्यम से ही सब कार्यों की सिद्धि होती है। उद्यम के बिना कुछ काम नहीं हो सकता। संसार में उद्यम ही प्रधान है। इसलिये निश्चय ही मैं विदेश जाकर उद्यम करूँगा। यहाँ रहना तो मुझे मौत से भी अधिक बुरा लगता है। यह सुनकर सिद्धार्थ निरुत्तर होकर चुप रहा गया।

---

* कः श्रद्धास्यति भूतायै सर्बो मां तूलयिष्यति।
शंकनीया हि लोकेऽस्मिन्निप्रतापा दरिद्रता।।

इस प्रकार चारुदत्त का निश्चय जानकर माता देवल की आँखे भर आई। वह आँसू बहाती हुई बोली कि बेटा! पहिले तो तू पढ़ता रहा इसलिये मेरे साथ नहीं रह सका। फिर तूने बारह वर्ष वेश्या के घर बिताये, तब मैंने वह दिन बड़े ही दुख में काटे। और अब जैसे-तैसे तेरा मुँह देख पायी तो तू इस प्रकार अप्रिय बातें सुना रहा है। बेटा! इस बूढ़ी माँ पर दया कर, और परदेश गमन का विचार छोड़ दे। इत्यादि।

चारुदत्त को तो अपने नगर में रहना मरने से भी अधिक बुरा लग रहा था। इसलिये वे विनयपूर्वक समझाकर माता से कहने लगे कि मुझे यहाँ रहते हुये भारी लज्जा आती है, इसलिये मैं यहाँ किसी भी तरह नहीं रह सकता। अब मैं तुझसे विशेष क्या कहूँ? मेरी आंतरिक दशा को जानकर तू मुझे आज्ञा दे दे, यही अच्छा है। जैसे तूने इतने दिन निकाले हैं वैसे ही कुछ दिन और सही। अपनी पुत्रवधू से सेवा कराना और आनंद से रहना मैं जल्दी ही लौटकर आऊँगा। यों कहकर चारुदत्त ने एक चतुर ज्योतिषी को बुलाया तथा उससे शुभ मुहूर्त निकलवाकर जाने का दिन निश्चय किया। मार्ग व्यय के लिये कुछ भी पास में नहीं था, इसलिये अपनी स्त्री के बचे हुये गहने लेकर चलने की तैयारी की।

विदेशगमन

अहो पुण्यं विना जन्तोर्नोद्यमो सिद्धिदो भवेत्।
तस्मात् पुण्यं जिनेन्द्रोक्तं कर्तव्यं धीधनैः सदा।।

प्रातःकाल होते ही चारुदत्त ने धन कमाने की इच्छा से परदेश के लिये प्रयाण किया। जब उनके मामा ने यह खबर सुनी तो उसे भारी दुख हुआ। और मोह के वशीभूत होकर चारुदत्त के पीछे-पीछे गया। और थोड़ी देर बाद चारुदत्त को पाकर कहा कि मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। इस प्रकार दोनों परदेश के लिये रवाना हो गये। मार्ग में अपने परिचित ग्राम, गली, बाग, नदी, तालाब और जंगल आदि को तय करते हुये दोनों चले जाते थे। कुछ दिनों के बाद वे बलाका देश में पहुँचे * और वहाँ सीमवती

* व्यापार सम्बन्धी इस प्रसंग में प्रायः सभी कथाओं में बहुत पाठ भेद हैं। किसने किस आधार से ऐसा लिखा है जो जानना कठिन है।

(1) हरिवंशपुराण में यह प्रकरण इस प्रकार हैः-

"चारुदत्त अपने मामा के साथ सबसे पहले उशीरावर्त में गये। वहाँ कपास खरीदा और तम्रलित नगरी में बेचने के लिये गये। मार्ग में वनाग्नि लग जाने से

नदी के तटपर पर स्थित रहे। मार्ग में उनने व्यापार के लिये अनेक जगह कई प्रयत्न किये, किन्तु कहीं भी सफलता नहीं मिली।

तब दोनों दुखी होकर बोले कि न जाने भाग्य में क्या वदा है। अपने पास कोई ऐसी अच्छी पूंजी भी नहीं है कि जिससे कोई व्यापार किया जा सके। जो कुछ थोड़ा बहुत है उससे क्या हो सकता है? फिर भी वे हताश नहीं हुये और निश्चय किया कि थोड़ी पूंजी से कोई छोटा ही व्यापार करेंगे। वह विचार करके उनने मूरा खरीदे। और उनकी गठरी बांधकर दोनों अपने सिर पर रखकर दूसरे नगर को चल दिये। चलते- चलते वे पलासपुर नगर में पहुँचे। वह पलासपुर नगर बहुत ही वैभव सम्पन्न था। वहाँ के बाजार बहुत ही सुन्दर थे। वहाँ पर अति उच्च मंदिर भी एक से एक बढ़कर सुन्दर शोभायुक्त थे। मंदिरों के दरवाजों की कला तो देखते ही बनती थी। उन मंदिरों पर स्वर्णकलश बाल सूर्य की भांति चमकते थे। उस नगरी को

कपास जल गया। तब चारुदत्त मामा को छोड़कर घोड़े पर सवार हो पूर्व दिशा की ओर गये। मार्ग में घोड़ा मर गया, तब चारुदत्त पैदल ही जैसे-तैसे प्रियंगपुर नगर पहुँचे। वहाँ अपने पिता के मित्र सुरेन्द्रदत्त के पास रहे। वहाँ से समुद्र यात्रा की। 6 बार सफलता मिली। सातवीं बार जहाज फट जाने से कमाई हुई 8 करोड़ की सम्पत्ति नष्ट हो गई। समुद्र से एक तख्ते के सहारे किनारे पर आये। वहाँ साधु से भेंट हुई।"

(2) आराधना कथा कोष में यह प्रकरण कुछ परिवर्तन के साथ इस प्रकार है- "चारुदत्त मामा के साथ सबसे पहले उलूख देश के उशीरावर्त नगर में गया। यहाँ उसने कपास खरीदा और ताम्रलिता नगरी में बेचने को गया। मार्ग में वनाग्नि के कारण कपास जल गया। वहाँ से चारुदत्त समुद्रदत्त के जहाज द्वारा पवनद्वीप में गया, वहाँ बहुत धन कमाया। फिर देश की ओर लौट रहा था कि जहाज फटा और सब माल डूब गया। इस प्रकार सात वार हुआ। अन्त में वह भी समुद्र में गिरा और एक तख्ते के सहारे किनारे पर पहुँचा वहाँ से वह राजगृह नगर पहुँचा, वहाँ एक सन्यासी से भेंट हुई।"

(3) वखतावरमल कृत आराधना कथाकोश में यह प्रकरण इस प्रकार है- "चारुदत्त मामा के साथ सर्व प्रथम उलुखल देश के मूसरावर्त नगर में गया। वहाँ कपास खरीदकर बोरा भरवाकर ताम्रलिप्त नगरी को गया। मार्ग में अग्नि लगने से कपास भस्म हो गया। फिर वह समुद्रदत्त सेठ के साथ पवनद्वीप में गया। वहाँ धन कमाया। और देश को आ रहा था कि मार्ग में 7 बार जहाज फटा और लकड़ी के सहारे किनारे पर लगा। राजगृही में आकर एक साधु से भेंट हुई"

इस प्रकार परस्पर नाम ग्राम आदि में फर्क है। चारुदत्त चरित्र में तो और भी अधिक परिवर्तन है। उसमें मूरों का व्यापार करना, बलाका देश में ताम्रलिप्त नगरी तक मूरों की गठरी सिर पर ले जाना और वहाँ वृषभध्वज सेठ के यहाँ रहकर भी मूरों का व्यापार करना आदि अनेक बातें ऐसी हैं जो अन्य कथाग्रन्थों में बिलकुल नहीं हैं।

देखकर चारुदत्त और उनके मामा खूब प्रसन्न हुये तथा दोनों ने नगर में प्रवेश किया। उस नगर में सम्पत्तिशाली 'वृषभध्वज' नाम का नगर सेठ था। उसी के मकान पर दोनों गये और नगर सेठ को अपना सब हाल सुनाया। यह सुनकर सेठ को दया आ गई और वह अपने मकान में उन दोनों को भीतर ले गया तथा प्रेमपूर्वक भोजन कराया। भोजन के बाद उन्हें वहीं रहने के लिये स्थान भी दिया। दोनों वहीं रहकर मूरों की दुकान करने लगे। कुछ दिनों तक उनने खूब ही परिश्रम पूर्वक मूरों का व्यापार किया जिससे चार पैसे उनके हाथ में हो गये।

कुछ अधिक द्रव्य संचय हो जाने के बाद उनने कपास का व्यापार प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उनका व्यापार बढ़ने लगा उसी नगर में एक कंजन नाम का वनजारा था। वह अनेक प्रकार की वस्तुओं से बैल और गाड़ियां भरकर व्यापारार्थ दूसरे देश को जा रहा था। इसलिये जाने के पूर्व नगर भर में खूब चर्चा हो रही थी। चारुदत्त ने भी जब यह बात सुनी तब उनने मामा से कहा कि यदि अपन भी इसके साथ हो जावें तो अच्छा है।

मामा ने भी इसमें अपनी सम्मति प्रगट की और उसी समय चार बैल खरीद लिये। उन पर कपास लादकर वे उस टांडे (कंचन) के साथ हो लिये। मार्ग में ठहरते-ठहरते सब व्यापारी आनन्दपूर्वक चले जाते थे, किन्तु दुर्भाग्यवश एक जंगल में भीलों ने व्यापारियों को लूट लिया। चारुदत्त ओर सिद्धार्थ के भी बैल लूट लिये गये तथा कपास में उन दुष्ट भीलों ने आग लगा दी जिससे वे बहुत दुःखी हुये। यहाँ नीतिकार कहते हैं कि पुण्य के बिना उद्यम सिद्धिदायक नहीं होता है। इसलिये बुद्धिमानों को जिनेन्द्रोक्त मार्ग पर चलकर पुण्य सम्पादन करना चाहिये।

चारुदत्त के पास अब कुछ भी नहीं बचा था। फिर भी वे दोनों साहस करके ऊजड़ वन में भटकते-भटकते एक नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ से उन्हें मलयागिरि पर्वत दिखाई दिया। वे दोनों साहस करके उस पर चढ़े। चढ़ते-चढ़ते उसकी चोटी तक पहुँच गये। वहाँ उन्हें रत्नों की एक खान दिखाई दी। उसे देखकर वे दोनों खूब प्रसन्न हुये और रत्नों को लेकर नीचे उतरे। मार्ग में वे दोनों अपने भाग्य को सराहते हुए तरह-तरह के विचार करते जा रहे थे कि कुछ दूर जाकर उन्हें भील मिले और उनने अनेक प्रकार का भय बताकर सब रत्न छीन लिये। जैसे-तैसे प्राण बचाकर चारुदत्त

अपने मामा के साथ वहाँ से छूटे और अपने भाग्य को दोष देने लगे। फिर उनने साहस नहीं छोड़ा और उद्योग के लिये आगे बढ़े। मार्ग में भयंकर वन–अटवियों को पार करते हुए और णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए वे दोनों आगे कुछ दिनों के बाद प्रियंगुवेला नगरी में पहुँचे। उस नगरी में प्रवेश करते ही उनका तमाम दुःख शोक मिट गया और नगरी की शोभा देखकर मन प्रसन्न हो गया।

वे दोनों बाजार की सुन्दर रचना देखते हुये और गगनचुम्बी महलों को देखते हुये, एक सेठ के मकान पर जा पहुँचे। सेठ का नाम सुरेन्द्रदत्त था। वह चारुदत्त के पिता भानुदत्त का मित्र था। चारुदत्त और सिद्धार्थ दोनों उसके पास गये और सुरेन्द्रदत्त सेठ से जुहार की। और अपना सब हाल सुनाया। सुरेन्द्रदत्त सेठ ने भी यह समझकर कि चारुदत्त हमारे मित्र का पुत्र हैं बहुत प्रेम प्रकट किया तथा सब कुशलक्षेम पूछकर उन्हें आश्वासन दिया। बाद में उन्हें स्नानादि कराके भोजन कराया और पहिनने को उत्तमोत्तम वस्त्र दिये। तथा उन्हें अपने पास ही रक्खा।

कुछ दिनों के बाद सेठ सुरेन्द्रदत्त ने व्यापारार्थ विदेश जाने का निश्चय किया और विविध वस्तुओं से अनेक जलयंत्र (जहाज) भरवाये तथा साथ में सिपाही, योद्धा, सवारी, ईंधन, अन्न, पानी एवं सभी प्रकार की आवश्यक सामग्री साथ में ली। कारण कि इस बार बारह वर्ष के बाद लौटने का निश्चय था शुभ मुहूर्त आने पर बड़ी धूमधाम और गाजेबाजे के साथ सुरेन्द्रदत्त सेठ के जहाज रवाना हुये। साथ में उसने चारुदत्त और सिद्धार्थ को भी लिवा लिया।

अनुकूल वायु होने से जहाज बड़े ही वेग के साथ चले जा रहे थे। पानी की जबरदस्त थपेड़ों से कभी कभी जहाज डंवाडोल भी हो जाते थे। सभी लोग णमोकर मन्त्र को जपते हुये अपनी यात्रा की कुशलता की अभिलाषा कर रहे थे। इस प्रकार चलते–चलते बहुत दिन हो गये और जहाज अनेक देशों को पार करते हुये सागर के किनारे एक द्वीप के पास पहुँचे। सभी लोगों ने उतर कर वहाँ विश्राम किया। वह द्वीप व्यापारप्रधान था। वहाँ पर सबने बड़ी ही कुशलता के साथ व्यापार किया। जो माल भरकर ले गये थे, उसे बेचा और वहाँ की बिक्री योग्य वस्तुयें जहाज में भरी। इस

प्रकार व्यापार करते-करते वहाँ बारह वर्ष व्यतीत हो गये। चारुदत्त ने भी अपार द्रव्य कमाया और वहाँ की रत्नादि बहुमूल्य वस्तुएं खरीदीं। बाद में सबने अपने देश जाने की तैयारी की और जहाज भरकर वहाँ से देश की ओर रवाना हुये।

संपत्ति और विपत्ति काल

यथैव पुष्पं विकासं समेत्य पातुं मधपाः पतन्ति
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।।

यों तो चारुदत्त के जीवन में अनेक आपत्तियां आयीं थीं और उनको साहस पूर्वक सहन भी किया था। किन्तु मालूम होता है कि विपत्तियाँ उनके पीछे ही पड़ी थीं। अब की बार चारुदत्त ने समझा था कि हमारा भाग्योदय हुआ है और खूब द्रव्य कमाया है, इसलिये बड़े ही आनन्द के साथ अपने देश में जाकर जीवन यात्रा करेंगे, किन्तु दैव को यह मंजूर नहीं था। समुद्र के मध्य में जहाज बड़े ही वेग के साथ चले जा रहे थे कि अनायास वायु का वेग बढ़ा, जिससे जहाज बहुत हिलने लगे। यह देखकर लोगों में कुछ भय बढ़ गया।

किन्तु अनेक प्रकारकी बातों से मन को सन्तुष्ट करके सब चले जा रहे थे। चारुदत्त भी अपने देश दर्शन की आशा लगाये, अनेक प्रकार से मनसूबे बांधते हुए चले जा रहे थे। इतने में दैव रूठा, और एक महामच्छ ने चारुदत्त के जहाज में ठोकर लगाई या कहीं वह बुरी तरह टकरा गया, जिससे उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। सारा सामान और सम्पत्ति समुद्र के पेट में समा गई। चारों और हाहाकार मच गया। कोई किसी की सहायता नहीं कर सका, किन्तु सब अपनी-अपनी रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। दैवयोग से चारुदत्त को लकड़ी का एक तख्ता मिल गया और सिद्धार्थ को भी एक लकड़ी मिल गई। वे दोनों उसके सहारे बहते गये। कुछ समय के बाद सिद्धार्थ एक किनारे पर जा लगा और बाहर निकल कर चारुदत्त को देखने लगा। जब चारुदत्त का कहीं पता नहीं लगा तब उसने खूब विलाप किया और दुखी होकर अपनी नगरी में गया। वहाँ पर सबसे अपनी सारी दुःख कथा कह सुनाई जिसे सुनकर सब लोग दुःखी हुये। चारुदत्त के कुटुम्बीजनों

की तथा चारुदत्त की माता और पत्नी के दुःख की तो कल्पना करना ही कठिन है। बिचारे सब अपने भाग्य को कोस कर रह गये।

उधर चारुदत्त भी तख्ते के सहारे समुद्र के किनारे आ लगे और मामा के न मिलने से बहुत दुखी हुए। फिर भी धैर्य धारण करके वह आगे बढ़े और उदंबरावती नगर में पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ कि सिद्धार्थ भी इसी प्रकार बचकर अपने नगर को गया है। यह जानकर चारुदत्त को बहुत हर्ष हुआ और अपना दुःख बहुत कुछ भुला दिया। फिर भी अकेले होने से बुरा मालूम होता था। किन्तु चारुदत्त बहुत ही उद्यमी थे। उनने अपना साहस नहीं छोड़ा और अकेले ही सिंधु देश की ओर चल दिये। कुछ दिनों के बाद वह सिन्धु देश के संवर ग्राम में पहुँचे।

संवर ग्राम बहुत ही सुंदर एवं समृद्धियुक्त था उसे देखकर चारुदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई वहाँ पर चारुदत्त के पिता भानुदत्त सेठ की बहुत संपत्ति थी। करीब 18 करोड़ का भंडार भरा था। उसका अधिकार चारुदत्त को मिल गया जिससे वह पूर्ववत् समृद्धिशाली हो गये। उस अपार सम्पत्ति को पाकर चारुदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक एक विशाल जिन मंदिर बनवाया, उस पर स्वर्णकलश चढ़ाये और बहुमूल्य उपकरण बनवाकर अपनी सम्पत्ति को सफल किया। अब वह प्रतिदिन चार प्रकार का दान देते थे सज्जनों और विद्वानों का सम्मान करते थे, दुखी-दरिद्रों को भी दान देते थे। जो भी उनके दरवाजे पर मांगता आता था वह कभी खाली हाथ वापिस नहीं जाता था। इस प्रकार चारुदत्त ने अपनी धर्मनिष्ठा एवं दानशीलता के द्वारा खूब ख्याति प्राप्त कर ली।

लोग चारुदत्त की नाना भांति प्रशंसा करने लगे। कोई कहता था कि नगर में यह एक ही दानी है, कोई कहता था कि इस जैसा धर्मात्मा दूसरा नहीं है, कोई कहता था कि वास्तव में चारुदत्त को जैसा धन मिला है वैसा ही वह खर्च करना भी जानता है। इस प्रकार चारों ओर से चारुदत्त की ख्याति होने लगी। वास्तव में थे भी वे इसके योग्य, वह गुणवान थे, दयावान थे, दानी थे, धर्मात्मा थे, तथा क्षमा और सत्य के धारी थे। वे निरंतर दीन दुखियों की रक्षा में तत्पर रहते थे और आनन्दपूर्वक अपना काल यापन करते थे।

चारुदत्त चरित्र

दान की परीक्षा

नाम वीर प्रणतेश, दान परीक्षा के निमित।
करि मानुष्य को भेष, आयो सो ता नगर में।

चारुदत्त के दान की चर्चा उसी नगर में नहीं किन्तु देश विदेश तक फैल गई थी। कोई भी मनुष्य जो कुछ भी मांगता था वह उसे मिलता था। इस प्रशंसा को सुनकर एक यक्ष के मन में चारुदत्त की परीक्षा करने की सूझी। उसका नाम प्रणतेश था। वह मनुष्य का रूप धारण करके उस नगर में गया। उसने अपना रूप महादुखी दरिद्री रंक के समान और शरीर बहुत ही रोगी एवं करुणाजनक बनाया था। वह अपना ऐसा दयनीय वेष बनाकर नगर में भीख मांगने को निकला।

चारुदत्त एक दिन जिनेन्द्र भगवान का नाम स्मरण करते हुये जिनमन्दिर को जा रहे थे, उसी समय वह यक्ष चारुदत्त के सामने हाथ जोड़कर आ खड़ा हुआ। चारुदत्त ने उसे दुखी देखकर पूछा कि तू इतना दुखी क्यों है? क्या तुझे द्रव्य की आवश्यकता है या शारीरिक पीड़ा है अथवा अन्य कोई व्यथा है? तब यक्ष बोला कि सेठजी! मुझे पेट में भयंकर शूल की पीड़ा है। मैं सैकड़ों उपाय करके थक गया किन्तु यह पीड़ा नहीं मिटती। दैवयोग से एक चतुर वैद्य मिला और उसने मेरे रोग को पहचान लिया। किन्तु इसका निदान इतना कठिन है कि न तो वह अच्छा हो सकेगा और न मैं जी सकूँगा।

वैद्य ने कहा– यह रोग भयंकर है। इसकी मात्र एक यही दवा है किसी मनुष्य की पसली लाकर उससे सेंका जाय। बस, इसी से पेट की पीड़ा मिट सकेगी। किन्तु मैं तो एक दीनहीन रंक अनाथ भिखारी हूँ। मुझे मनुष्य की पसली कहाँ से मिल सकती है? मैं दिन रात इसी चिन्ता में जला करता हूँ। किन्तु दैवयोग से आपका नाम और मुँह मांगा दान सुनकर मेरे हर्ष का पार नहीं रहा। आपकी दानशीलता की महिमा सुनकर ही मैं दौड़ा आया हूँ। आप तो महादानेश्वर हैं। यदि मुझे अपनी पसली दे सकें तो मेरी पीड़ा मिट जाय। पसली के सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

यह सुनकर चारुदत्त ने उस भिखारी को आश्वासन देते हुये कहा कि तू चिन्ता मत कर, मैं तुझे पसली दूंगा और तेरा रोग मिट जायेगा। इतना

कहकर चारुदत्त ने उसी समय छुरी मंगाई और अपनी पसली (कलेजा) काटकर उसे दे दी। * यक्ष यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया। और अपना मनुष्यरूप मिटाकर देव के रूप में प्रगट हुआ। तथा चारुदत्त की स्तुति करने लगा। वह स्तुति करता हुआ बोला कि हे दानेश्वर! आप धन्य हो, आपके माता पिता को भी धन्य है, जिनसे आपने जन्म लिया है। वह दिन तिथि और वार भी धन्य है, जिसमें आपका जन्म हुआ है। आपके इस शुभ नाम को भी धन्य है। सचमुच में दानी हो तो ऐसा हो! वास्तव में इस जग में आप जैसा त्यागी कोई दूसरा नहीं है।

इस प्रकार स्तुति करके वह यक्ष चारुदत्त के पास बैठ गया। और अपने प्रभाव से पसली का घाव मिटा दिया तथा शरीर ज्यों का त्यों कर दिया! चारुदत्त ने अपनी सर्व सम्पत्ति दान कर दी और अकेले होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। **

सन्यासी के जाल में

प्रियवादीति विश्वस्य यकवृत्तेर्दुरात्मनः।
अधोऽधोऽनुचरो मुग्धः पततीति किमद्भुतम्।।

घूमते-घूमते चारुदत्त राजगृही नगरी में पहुँचे। और एक स्थान पर ठहर गये। दैवयोग से वहाँ एक दंडी सन्यासी मिला। उसका नाम विष्णुदत्त था। वह ऊपर से देखने में तो बड़ा सीधा सादा, भव्य और साधुपुरुष मालूम होता था किन्तु उसका अन्तरंग बहुत काला था। चारुदत्त उसकी मीठी बातों में आ गये और अपनी सुख-दुःख की सब बातें उसे सुना दीं। सब हाल सुनकर सन्यासी बोला कि बेटा! तुम धन के लिये इतने चिन्तित क्यों हो? मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगा! एक जंगल में रस का कुँआ है। उसके रसायन से मनवांछित द्रव्य प्राप्त हो जाता है।

---

* हरिवंशपुराण आराधना कथाकोश या अन्यत्र इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं है। और न जैन सिद्धांत ही इस प्रकार कलेजा काटकर (मांस) देने को दान मानता है। अन्य सभी ग्रन्थों में कुये से निकलने पर तुरन्त सन्यासी के जाल में फंसने की बात ही है जो आगे बताई जायेगी। यक्ष की यह कथा मात्र इसी पुस्तक में हैं।

** देव के प्रगट हो जाने पर भी अपनी करोड़ों की सम्पत्ति दान करके स्वयं निर्धन होकर अकेले धन कमाने के लिये इधर-उधर भ्रमण करने का कोई संगत कारण प्रतीत नहीं होता।

यह सुनकर चारुदत्त के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा और वह बोले कि महात्मन्! चलिये, जल्दी चलिये और मुझे वह रसकूप बताइये। अथवा आप थोड़ा सा यहीं ला दीजिये। आपकी जैसी इच्छा या आज्ञा हो सो मैं करने को तैयार हूँ। सच है, कौन धन-लंपटी लोग दुर्जनों के द्वारा नहीं ठगाये जाते? * सन्यासी भी चारुदत्त को अपने जाल में फंसा हुआ जानकर जंगल में ले गया। वह निर्जन वन बहुत ही भयंकर था। थोड़ी दूर जाकर एक कुआ दिखाई दिया। वे दोनों उसके बांध पर बैठ गये। विष्णुदत्त ने चारुदत्त से कहा कि तुम्हें इस कुये में उतरना होगा तब ही रस मिलेगा।

यों कहकर उसने एक चौकी के चारों कोनों में रस्सी बांधी और उस पर चारुदत्त को बिठाकर हाथ में एक तूंबी दे दी और कहा कि बेटा! जब तू नीचे पहुँच जाय तब इस तूंबी में रस भर लेना और चौकी पर तूंबी रख देना। फिर रस्सी को हिला देना, जिससे मैं रस्सी द्वारा चौकी ऊपर खींच लूंगा। उसके बाद मैं फिर चौकी नीचे डालूंगा तब तू उस पर बैठ जाना। और मैं डोरी खींचकर तुझे निकाल लूंगा।

यह सुनकर चारुदत्त ने कहा कि साधु! जो आप कह रहे हैं वह बिल्कुल ठीक है। मैं इसी प्रकार करूँगा। चारुदत्त ने अपने भोले स्वभाव के कारण कपटी साधु के कपट को नहीं समझा और वह चौकी पर बैठ गये। सन्यासी ने चौकी कुये में डाली और चारुदत्त को नीचे उतार दिया। कुये में एक खोह थी, उसी के आधार से चारुदत्त बैठ गये और तूम्बी में रस भरने लगे। वहीं बहुत दिन से एक आदमी पड़ा हुआ था। उसने चारुदत्त को रोका। ** उस आदमी को देखकर चारुदत्त को भय मालूम हुआ। किन्तु उसने साहस और विश्वास दिलाते हुये कहा कि भाई! तुम डरो मत। मैं जानता हूँ कि तुम दुष्ट विष्णुदत्त साधु के जाल में फँस गये हो और उसी स्वार्थी ने तुम्हें कुयें में उतारा है।

---

* चारुदत्तोऽवदत्तात कुरु त्वेव मम ध्रुवम्।
धनाशालम्पटा लोके दुर्जनैः केन बंचिताः।

** हरिवंश पुराण में लिखा है कि उस आदमी ने यह कहकर चारुदत्त को रोका था कि यदि तुम जीना चाहते हो तो इस भयंकर रस का स्पर्श मत करो। इसके स्पर्श करने से क्षय की भांति शरीर सूखने लगता है और अन्त में वह प्राण लेकर ही छोड़ता है। यथा :-

मा स्प्राक्षीस्त्वं रसं भद्र रौद्रं यदि जिजीविषुः।
स्पृशेत चेन्न जीवतं मुच्चति क्षयरोगवत्।।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि महाशय! आप कौन है? कहाँ के रहने वाले हैं? आप यहाँ कैसे आये? सब बातें सत्य-सत्य कहिये। तब वह आदमी बोला कि भाई! मेरी कथा सुनो। इन्द्रपुरी के समान शोभायुक्त उज्जैनी नगरी है। वहीं का रहने वाला मैं एक वणिक पुत्र हूँ। हमारी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी इसलिये निर्धनता में जैसे-तैसे अपने दिन काटते थे। * एक दिन दैवयोग से उस दुष्ट तपस्वी से भेंट हुई। उसने मुझे मीठी बातें सुनाकर अपने जाल में फंसा लिया। मैंने लोभ के कारण उसकी दुष्टता को नहीं समझ पाया, और उसे अपना हितैषी माना। वह मुझे इस जंगल में ले आया और एक तूंबी देकर इस कुये में उतार दिया। मैंने रस से तूम्बी भरकर रस्सी से बंधी हुई चौकी पर रख दी। और उसने उसे खींच ली। फिर जब दूसरी बार रस्सी डाली तब मैं उससे बंधी हुई चौकी पर बैठ गया। उसने आधी दूर तक खींचकर बीच में ही रस्सी काट डाली, जिससे मैं बुरी तरह यहाँ आ गिरा, और चोट लगने से पड़ा-पड़ा कराहता रहा। वह पापी सन्यासी तो रस लेकर चला गया, किन्तु मैं यहाँ इस क्षयकारी रस के कारण अर्धदग्ध होकर मर रहा हूँ। भाई! अब मैं अधिक समय तक नहीं जी सकता।

चारुदत्त ने यह रोमांचकारी बात सुनकर निश्चय किया कि मैं भी इसी प्रकार उस पापी के कपटजाल में फंस गया हूँ। अब मैं यहाँ से कैसे निकलूंगा? यह विचार कर चारुदत्त ने उस आदमी से कहा कि अब तुम मुझे कोई उपाय बताओ, मुझे क्या करना चाहिये? तब वह मनुष्य बोला कि इस पापी के पंजे से बचने का एक मात्र यही उपाय है कि आप रस की तूम्बी भरकर इस चौकी पर रख दीजिये। साधू इसे खींच लेगा। और फिर जब दूसरी बार चौकी डाले तब आप स्वयं उस पर न बैठकर कुछ पत्थर रख देना। सन्यासी आपको बैठा जानकर रस्सी खींचेगा, और बीच में से ही काट डालेगा। बस, आपके प्राण बच जांयगे। ऊपर से पत्थर गिरेंगे इसलिये उनसे बचने के लिये एक बगल बैठ जाना चाहिये। चारुदत्त को यह सलाह बहुत

---

* आराधना कथाकोश में इस प्रकार लिखा है कि "मैं उज्जैनी का रहने वाला हूँ। मेरा नाम धनदत्त है। मैं सिंहलद्वीप गया था, लौटते समय जहाज फट गया। धन-जान की भारी हानि हुई। जैसे-तैसे किनारे लगा कि- इस सन्यासी से भेंट हो गई। और इसके जाल में फंस गया। इसी प्रकार हरिवंशपुराण में भी है। किन्तु चारुदत्त चरित्र में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। और न उस आदमी का नाम (धनदत्त) ही बताया है।

ही योग्य मालूम हुई और उनने वैसा ही किया। इस भय से कि यदि रस की तूम्बी भरकर नहीं देंगे तो वह सन्यासी ऊपर से पत्थर आदि मारकर हमें सतायेगा, इसलिये पहले तूम्बी भरकर चौकी पर रख दी और रस्सी तान दी। सन्यासी ने अपना मतलब सिद्ध होता जानकर रस्सी खींच ली। और रस की तूम्बी लेकर दूसरी बार चौकी कुयें में डाली। तब चारुदत्त ने उस पर स्वयं न बैठकर कुछ पत्थर रख दिये और रस्सा हिलाकर स्वयं एक तरफ खड़े हो गये। सन्यासी ने रस्सी खींची और आधी दूर ऊपर आने पर उसे बीच से ही काट डाली। इसलिये चौकी पत्थरों सहित कुए में आ गिरी और सन्यासी अपना मतलब सिद्ध हुआ जानकर तूम्बी ले अपने स्थान पर चला गया।

उधर आपत्तिग्रस्त चारुदत्त जिनेन्द्र भगवान का नाम स्मरण करते हुए विचारने लगे कि कर्म बहुत बलवान है। उसका जब जैसा उदय आता है तब जीव को वह सहन करना ही पड़ता है। इसलिये अब दुःख, शोक और चिन्ता करना तो व्यर्थ है। हां, कुछ उपाय अवश्य सोचना चाहिये। यों विचार कर चारुदत्त ने उस मनुष्य (धनदत्त) से कहा कि क्या इस कुएँ से निकलने का कोई उपाय है? * तब धनदत्त ने कहा कि एक उपाय मेरे ध्यान में है अवश्य, किन्तु वह कठिन एवं भयावह है। यहाँ एक गोह प्रतिदिन दोपहरी में ** रस पीने के लिये आती है। आप उसकी पूंछ पकड़ लेना, वह आपको खींचकर ऊपर तक ले जायेगी इसके सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

चारुदत्त ने पूछा कि आप जिस प्रकार से मुझे निकलने का उपाय बता रहे हैं उसी प्रकार आप क्यों नहीं निकले? और अभी तक यहाँ पड़े-पड़े क्यों दुख उठा रहे हो? तब धनदत्त ने कहा कि मुझे भयंकर चोट लगी है इसलिये गोह की पूंछ पकड़कर निकलने की मुझ में शक्ति नहीं है। यह सुनकर चारुदत्त कुछ विचार में पड़ गये और सोचने लगे कि गोह कब आती है और मैं कब निकल पाता हूँ?

---

* आराधना कथा कोश में लिखा है कि निकलने का उपाय पूछने के पूर्व चारुदत्त धनदत्त को पंच नमस्कार मन्त्र देकर और सन्यास धारण कराया था। फिर उपाय पूछा था, किन्तु यह संगत प्रतीत नहीं होता।

** आराधना कथा कोश में लिखा है कि गोह सबेरे आती है। यथाः- "अघ पीत्वा रसं गोघा गता, प्रातः समेष्पति।"

इतने में धनदत्त बोला कि भाई! यह निश्चय समझो कि अब थोड़ी ही देर में मेरे प्राण निकलने वाले हैं। मेरा चित्त घबड़ा रहा है। अब मैं क्या करूँ? क्या मेरी मौत इसी प्रकार होगी? होनहार बलवान है लोभ के कारण मैं यहाँ आकर फंसा हूँ उसी का यह फल भोग रहा हूँ।

यह सुनकर चारुदत्त ने उसे ढाढस बंधाया और समझाया कि हे भाई! अब तुम घबराओं नहीं, जो होना है सो होकर ही रहेगा। व्यर्थ ही मोह ओर विलाप करने से क्या लाभ है। अब तुम संसार मोह का त्याग करके धर्म में अपना चित्त स्थिर करो। अन्त समय में धर्म ही इस जीव का सहायक है। तथा बाह्य संकल्प विकल्प दुर्गति के देने वाले हैं। इसलिये सब मोहजाल को त्याग कर पंचनमस्कार मंत्र का उच्चारण करो। उसी का विचार करो और उसी का मनन करो। इस णमोकार मंत्र में (णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं) पांच पद, पैंतीस अक्षर और अट्ठावन मात्रायें हैं। तुम इनका ध्यान करों इस प्रकार मंत्र और उसकी महिमा आदि सुनकर धनदत्त के मन में प्रसन्नता हुई और वह श्रद्धापूर्वक णमोकर मंत्र जपने लगा।

*इसके बाद चारुदत्त ने उसका मरण निकट जानकर स्वर्ग मोक्षदायी जैनधर्म तथा सन्यास धारण कराया और जैन धर्म का उपदेश दिया। इस धर्म निमित्त को पाकर धनदत्त के परिणाम बहुत शुद्ध हो गये और वह णमोकार मंत्र का जाप करता हुआ शरीर को त्याग प्रथम स्वर्ग में देव हुआ * सच है, इस णमोकार मंत्र के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता? यह पाप को धोकर स्वर्ग और मोक्षपद का देने वाला है। इसलिये भव्य जीवों को इसे सदा जपना चाहिए। इस मंत्र के प्रभाव से ही जीव सर्वार्थसिद्धि जाता है, और इसी के प्रभाव से समस्त ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होती हैं। इस मंत्र के प्रभाव से देवगण सेवा करते हैं। और इससे संसार के दुखों का नाश होता है। इसलिये शुभ गति का करने वाला और दुर्गति का नाश करने वाला पंचनमस्कार मंत्र सदा ध्याने योग्य है। यही पंचनमस्कार मंत्र जगत में सारभूत है।*

** हरिवंश पुराण व आराधना कथाकोश में धनदत्त के मरण का और प्रथम स्वर्ग जाने आदि का कोई उल्लेख नहीं है।*

उधर चारुदत्त कुँए से निकलने की चिन्ता में बैठे हुए थे कि इतने में गोह आई और वह रस पीकर वापिस जाने लगी। चारुदत्त ने तुरन्त ही उसकी पूंछ पकड़ ली और उसके साथ ऊपर को खिंचते हुए चले गए। किन्तु लगभग एक हाथ निकलना ही बाकी रहा था कि वह गोह पास के एक बड़े बिल में घुस गई। चारुदत्त भी उसी के साथ भीतर चले गये। किन्तु जब वह गोह एक छोटे से छिद्र से ऊपर जाने लगी तब चारुदत्त घबराये और उनने विचार किया कि इस छोटे छिद्र में से गोह तो ऊपर निकल जायेगी मगर मैं उसमें से कैसे निकल सकूँगां मेरे तो इसमें प्राण ही निकल जायेंगे। यह विचार कर उनने उस गोह की पूंछ छोड़ दी और वहीं रह गये तथा गोह ऊपर निकल गई।

आपत्तियों पर आपत्तियाँ

एक्करस जाव न अन्तं जामि दुक्खस्स पावकम्मे हं।
तावच्चिय गरुयरं बिइयंतु निरुवियं बिहिणा।।

जब चारुदत्त को बाहर निकलने का मार्ग नहीं दिखा तब वे जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करते हुए बारह भावनाओं का चिन्तवन करने लगे। दैवयोग से उसी समय बकरियों का समूह उस तरफ वन में चरने के लिये आया और उस कुएँ के पास से निकल गया, किन्तु एक बकरी का पैर उस बिल में घुस गया जिसके नीचे चारुदत्त बैठे हुए थे। चारुदत्त ने मौका देखकर उस बकरी का पैर तुरंत ही पकड़ लिया जिससे वह बकरी बड़े जोर से मिमयाने लगी। ग्वाला बकरी की आवाज सुनकर वहाँ आया। और बकरी का पैर निकालने के लिये उस बिल को खोदने लगा। इतने में भीतर से चारुदत्त बोले कि तनिक धीरे-धीरे खोदना!

बिल में से मनुष्य की आवाज सुनकर ग्वाला आचर्श्चचकित हो गया और बोला कि इस बिल में कौन बोल रहा है? तू कोई मनुष्य है, देव है, या भूतप्रेत है? तब चारुदत्त ने कहा कि भाई! मैं मनुष्य हूँ, दया करके मुझे यहाँ से शीघ्र ही निकालो। ग्वाले को वास्तव में मनुष्य जानकर कुछ

** हरिवंशपुराण व आराधना कथाकोश आदि में यह वर्णन नहीं है। उनमें मात्र इतना ही कथन है कि चारुदत्त गोह की पूंछ पकड़कर ऊपर निकल आये और*

*शान्ति हुई और उसने धीरे- धीरे बिल खोदकर चारुदत्त को बाहर निकाल लिया। * चारुदत्त बिल में से निकलकर आगे को रवाना हो गए। मार्ग में उन्हें एक महाभयंकर जंगल मिला। उसे पार करते हुए चारुदत्त मन में जिनेन्द्र भगवान का नाम स्मरण करते हुये चले जा रहे थे। कहीं भयानक सुअर, सियाल, चीता और शेर फिर रहे थे तो कहीं बन्दर, रींछ, भेंसा और लंगूर फिरते थे। कहीं मत्त हाथी झूमते फिरते थे तो कहीं शार्दूल सिंह, अजगर और ऐसे ही भयंकर प्राणी दिखाई देते थे फिर भी चारुदत्त साहस करके आगे बढ़ते ही चले गये।*

आगे चलकर उन्हें एक भयानक जंगली भैंसा मिला। वह काल के समान विकराल मालूम होता था। चारुदत्त को देखकर वह मारने को दौड़ा। चारुदत्त भी उसे अपनी ओर दौड़ता हुआ देखकर भागे। बहुत दूर तक भैंसा ने चारुदत्त का पीछा नहीं छोड़ा। आगे-आगे चारुदत्त अपने प्राण लिये भाग रहे थे, पीछे-पीछे वह भयंकर भैंसा दौड़ रहा था। भागते-भागते चारुदत्त को पास में ही पर्वत की एक गुफा दिखाई दी और वे उसमें घुस गए। किन्तु दैव तो वहाँ भी साथ ही था।

गुफा के दरवाजे पर ही एक काल समान विकराल भुजंग सो रहा था। उसकी परवाह न करके मात्र भैंसे से बचने के लिये चारुदत्त उस सर्प के फण पर पैर रखकर गुफा के भीतर जा कूदे। चारुदत्त तो उस कन्दरा में घुस गये किन्तु पैर पड़ जाने से वह सांप जाग उठा और क्रोध में ऐसे जलने लगा जैसे अग्नि में घी होमा गया हो। इतने में उसे सामने ही भैंसा दिखाई दिया। उसे देखकर अजगर सांप ने समझा कि इसी ने मेरे सिर पर पैर रखा है। बस फिर क्या था? अजगर के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा, और उस भैंसे के साथ युद्ध करने लगा।

उधर चारुदत्त गुफा के भीतर से अजगर और भैंसा का युद्ध देखने लगे।

मूर्छित हो गये। थोड़ी देर बाद वहाँ से एक वन की ओर चल दिये। उसमें ऐसा कथन नहीं है कि गोह एक बिल में घुस गई और उसी के साथ चारुदत्त भी चले गये। और यह कुछ संगत भी नहीं है। कारण कि जिस बिल में से उतनी बड़ी गोह निकल गई उसमें बकरी का पैर फंस गया और उसे निकालने के लिये ग्वाला को जमीन खोदना पड़ी, यह कैसे सम्भव है? कारण कि गोह से बकरी का पैर पतला होता है। इस चरित्र में यह कथन किस आधार से किया गया है सो मालूम नहीं होता।

भैंसा की भयंकर आवाज और अजगर की फुंकार हृदय को हिला देती थी। बड़ी देर तक वे दोनों लड़ते रहे, मगर न कोई हारा और न कोई जीता। उन दोनों का युद्ध जमा हुआ देख मौका पाकर चारुदत्त वहाँ से भाग खड़े हुये। *

जब वह जंगल में बहुत दूर पहुँच गये तब उन्हें कुछ शांति मिली। लेकिन निर्जन वन की भयानकता अच्छे-अच्छे वीरों का हृदय दहला देने वाली थी। फिर भी चारुदत्त णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुये साहसपूर्वक आगे चलते गये। दैवयोग से थोड़ी दूर जाने पर दो मस्त भैंसा मिले और वे चारुदत्त को मारने के लिये दौड़े चारुदत्त भी अपने प्राण बचाकर वहाँ से भागे और भागते-भागते मौका देखकर एक वृक्ष पर चढ़ गये। वह वृक्ष बहुत बड़ा और ऊँचा था, इसलिये चारुदत्त की रक्षा हो गई। वह भैंसा वृक्ष के नीचे आये ओर झींक झांक कर वहाँ से चले गये। ** उन्हें गया हुआ देखकर चारुदत्त वृक्ष के नीचे उतरे और आगे को बढ़े। चलते-चलते मार्ग में एक नदी मिली। उसके किनारे पर चारुदत्त विश्राम करने के लिये ठहर गये।

धन प्राप्ति का प्रयत्न

जस्सत्थो तस्स सुहं, जस्सत्थो पण्डिओ य सो लोए।
सस्सत्था सो गुरुओ, अत्थविहूणो य लहुओ य।।

उधर रुद्रदत्त चारुदत्त को ढूंढ़ने के लिये देश देशान्तरों में फिर रहे थे। साथ में चारुदत्त के पांच मित्र हरिसिख, गोमुख, बाराहक, परतप और मरुभूत भी थे। वे सब घूमते हुए उसी नदी के किनारे आ गये जहां चारुदत्त विश्राम कर रहे थे। उन्हें देखकर सब के हर्ष का पार नहीं रहा। *** चारुदत्त भी बड़े प्रेम के साथ सबसे मिले। सबकी आंखे आनन्द के आंसुओं से भर आयीं। परस्पर कुशल समाचार पूछे। चारुदत्त ने अपनी सब कथा सुनाई। और घर के कुशल समाचार पूछे। इस प्रकार क्षेमकुशल की बातों के बाद सब ने उसी नदी में स्नान किया और शांतिपूर्वक भोजनपान किया

---

* आराधना कथाकोश में यह वर्णन नहीं है। किन्तु हरिवंशपुराण में इसी प्रकार है।

** यह कथन हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश में नहीं है।

*** हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में मात्र रुद्रदत्त से मिलने की बात है साथ में पांच मित्र के आने का उल्लेख नहीं है।

*उसके बाद सातों वीर वहाँ से निकटवर्ती एक नगर की तरफ * चल दिये। उस नगर का नाम 'श्रीपुर' था। वह नगर बहुत समृद्धि और शोभायुक्त था। वहाँ एक धनसम्पन्न प्रियदत्त नाम का सेठ रहता था। वह भानुदत्त का मित्र था। वे सब उसी के यहाँ गये और अपना सारा हाल उसे कह सुनाया। प्रियदत्त ने सहानुभूति दिखाते हुये बहुत ही प्रेम प्रदर्शित किया और सबका आदर सम्मान करके भोजन कराया। तथा उनको व्यापार के लिये कुछ द्रव्य भी दिया। * वे सब द्रव्य लेकर बाजार में गये और वहाँ पर व्यापार के लिये कांच की चूड़ियां खरीदीं। फिर उनने चुड़ियों की गठरी बांधकर सिर पर रखी और उन्हें बेचने के लिये गांधार देश में गये। वहाँ पर चूड़ियां बेचकर कुछ द्रव्य एकत्रित किया।*

एक दिन रुद्रदत्त को एक आदमी मिला और पूंछने लगा कि आप कहाँ के रहने वाले हैं? ऐसा नीच व्यवसाय आप क्यों करते हैं? आपको तो यह शोभा नहीं देता। आप अत्यन्त रूपवान, गुणवान, कुलीन एवं सज्जन पुरुष मालूम होते हैं फिर क्या कारण है कि आप इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं और यह व्यवसाय करते हैं? कृपया तमाम हाल मुझसे कहिये। यदि मुझसे बन सका तो मैं आपको उचित मार्ग बताऊँगा।

उस आदमी की बातें सुनकर रुद्रदत्त को कुछ आश्वासन मिला 'डूबते को तिनके का सहारा' की भांति उसे भी अपना सहायक समझकर अपनी सारी कथा आद्योपान्त कह सुनाई। जब उस आदमी ने उनकी राम कहानी सुनी तब उसे दया आ गई ओर वह बोला, आप इस व्यापार को छोड़ दीजिये। मैं आपको धनप्राप्ति का एक उपाय बतलाता हूँ।

यहाँ से थोड़ी दूर एक बहुत ही ऊँचा पर्वत है। वहाँ पहुँचने के लिये कोई सुगम मार्ग नहीं हैं, किन्तु बहुत ही सकरी (छोटी तंग) एक गली है। उस गली में मात्र बकरा ही चल सकता है, दूसरे प्राणी या मनुष्य का जाना कठिन है। इसलिये यदि बकरों पर सवार होकर वहाँ जाया जाये तो धीरे-धीरे पर्वत पर पहुँच सकते हैं। वहाँ पहुँचने पर फिर आगे जाने के लिये एक और उपाय करना होगा। वह यह है कि बकरे

** यह उल्लेख हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश नहीं है। तथा इसके आगे भी बहुत सा वर्णन इन कथा ग्रन्थों में नहीं है। इस चरित्र में विस्तार से बहुत सी बातें विशेष पाई जाती हैं।*

को मारकर उसकी मसक बनानी होगी। और एक-एक छुरी लेकर उसमें स्वयं बैठकर उसका मुँह सी देना होगा। और स्थिर होकर कुछ समय उसी में बैठना होगा।

वहाँ पर रत्नद्वीप भेरुण्ड पक्षी आते हैं। जब वे वहाँ आकर उस मसक को देखेंगे तब उसे मांस-पिण्ड समझकर अपनी चोंच में दवा कर उठा ले जायेंगे और वहाँ पृथ्वी पर रख कर खाने का प्रयत्न करेंगे। उसी समय अपनी छुरी से मसक का मुँह फाड़ना होगा। ऐसा करने से जब पक्षी उसमें से मनुष्य को निकलता हुआ देखेंगे तब वे भयभीत होकर वहाँ से भाग जायेंगे। इस प्रकार रत्नद्वीप में पहुँच कर जितनी इच्छा हो उतने रत्नादिक वहाँ से ला सकेंगे।

यह सुनकर रुद्रदत्त के हर्ष का पार नहीं रहा और उसने विचार किया कि रत्नद्वीप में जाने की बात चारुदत्त से करना चाहिये किन्तु यदि उससे बकरा मारने आदि की बात कही जायेगी, तो वह कदापि इसके लिये तैयार नहीं होगा। इसलिये कोई दूसरा बहाना बनाकर उसे तैयार करना चाहिये। चारुदत्त बहुत ही धार्मिक विचार का पुरुष है। इसलिये यदि उससे यह कहा जाये कि रत्नद्वीप में बहुत सुन्दर जिन मन्दिर हैं, उनके दर्शन करना चाहिये, तो वह अवश्य ही चलने को तैयार हो जायेगा।

यह विचार कर रुद्रदत्त चारुदत्त के पास गया और बोला कि भाई! यहाँ से थोड़ी ही दूर एक पर्वत के ऊपर बहुत ही मनोहर जिन चैत्यालय है। वहाँ की यात्रा जीवन को सफल करने वाली है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अपन सब वहाँ चलें और दर्शन करके अपने जीवन को सार्थक बनावें। चारुदत्त को तो कुछ खबर ही नहीं थी कि इनके मन में क्या कपट है, इस लिये वह शीघ्र ही तैयार हो गये और बोले कि काकाजी! ऐसा सुन्दर सुयोग्य क्यों छोड़ना चाहिये? चलिये, अभी ही चलकर वन्दना करें।

*चारुदत्त की स्वीकृति और उत्कण्ठा देखकर रुद्रदत्त उसी समय सात बकरे ले आया * और उन पर सातों आदमी चढ़कर पर्वत की ओर चल दिये। जब वे लोग तलहटी तक पहुँचे तब सब वहीं ठहर गये और पर्वत पर*

** हरिवंशपुराण और कथा कोश में मात्र दो बकरे लाने का ही कथन है। कारण कि वहाँ मात्र रुद्रदत्त और चारुदत्त का ही मिलाप बताया है।*

चढ़ने का मार्ग देखने लगे। वह मार्ग मात्र चार अंगुल ही चौड़ा था। इतना ही नहीं, किन्तु उसके दोनों ओर पाताल के समान नीचाई थी और कहीं भी ठहरने या टिके रहने के लिये कोई सहारा तक नहीं था।

उस भयंकर और संकुचित मार्ग को देखकर चारुदत्त बोले कि आप सब लोग यहीं ठहरिये और मैं अकेला ही जाकर इस मार्ग को देखे आता हूँ कि यह कहाँ तक इसी प्रकार छोटा और भयकारी है। जब तक मैं वापिस न आ जाऊँ तब तक आप यहीं रहें। यह सुनकर छहों मनुष्य बोले कि नहीं, यह नहीं हो सकता। आप ही यहाँ ठहरिये और हम जाकर मार्ग देखे आते हैं। यह काम कुछ अकेले आपका तो है नहीं, यह तो सबका काम है। फिर आप ही क्यों जानबूझ कर आपत्ति में फंसने जाते हैं? यदि दैवयोग से हम गिर भी गये तो कोई बात नहीं, किन्तु आपका जीवन विशेष मूल्यवान है। आपके द्वारा अनेकों का उपकार हुआ है और होगा। आप विशेष पुण्यशाली एवं धर्मात्मा हैं। इसलिये हम लोगों की अपेक्षा आपका जीना विशेष आवश्यक है।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि आप लोग यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आप सबका सेवक हूँ और आप हमारे मान्य हैं, बड़े हैं, एवं आदरणीय हैं। और फिर, यदि में अकेला मर भी गया तो क्या बिगड़ जायेगा? किन्तु आप छह सज्जनों का जीवन बचना चाहिये। इसलिये अब आप आगे कुछ न कहें, मैं ही अकेला जाकर मार्ग देखे आता हूँ।

यों कहकर चारुदत्त बकरे पर चढ़कर उस संकुचित मार्ग को देखने के लिये चल दिये। वह मार्ग मात्र चार अंगुल चौड़ा था और दोनों ओर बहुत ही गहराई थी। इसलिये उस मार्ग में जाते हुये ऐसा भय लगता था कि यदि बकरे का पैर तनिक ही इधर से उधर हुआ कि नीचे जा गिरेंगे और फिर एक भी हड्डी तक का पता नहीं चलेगा। फिर भी चारुदत्त साहसपूर्वक णमोकार मंत्र को जपते हुये धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये। मार्ग में उनका न तो कोई सहारा था और न किसी दूसरे मनुष्य के दर्शन तक होते थे।

बहुत दूर पहुँचने पर एक सुन्दर स्थान दिखाई दिया। उसे देखकर चारुदत्त को बहुत प्रसन्नता हुई और विचार किया कि अब लौट कर सबको बुलाना चाहिये। यों विचार कर उस स्थान से अपने बकरे को लौटाया और

नीचे की ओर चल दिये। बकरा धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था, इसलिये बहुत समय लग गया। उधर रुद्रदत्त आदि पर्वत की तलहटी में बैठे-बैठे सोच रहे थे कि अभी तक चारुदत्त क्यों नहीं आया? उसे गये हुए बहुत देर हो गई। अब तक तो लौट ही आना चाहिये था। मार्ग में उसे कहीं कोई आपत्ति तो नहीं आ गई? जो हो, अब हम सबको उसी ओर चलना चाहिये। मार्ग में वह कहीं न कहीं तो मिल ही जायेगा।

यह विचार करके वे सब अपने-अपने बकरे पर चढ़कर उसी संकुचित मार्ग से एक के पीछे एक होकर चल दिये। इधर यह लोग ऊपर चले जा रहे थे और उधर चारुदत्त नीचे वापिस आ रहे थे। इसलिये वे बीच मार्ग में आमने सामने मिल गए। चारुदत्त को देखकर छहों मनुष्य बहुत प्रसन्न हुए, किन्तु चारुदत्त को अत्यन्त खेद हुआ और वह बोले कि आप लोगों ने यह बड़ी मूर्खता की है। मैंने तो कहा था कि जब तक मैं वापिस न आ जाऊँ, तब तक आप लोग वहीं ठहरें फिर आप सब मेरे आने के पूर्व ही वहाँ से क्यों चल दिये? अब हम सब यहाँ बुरी तरह फंस गए हैं। यह मार्ग बहुत ही तंग है। इसलिये न तो पीछे की ओर फिर सकता हूँ ओर न आप लोग ही फिर सकते हैं। तथा एक दूसरे की बगल में से निकल जांय यह तो एक प्रकार से असम्भव ही है। यदि मैं फिरता हूँ तो मेरा मरण होगा और यदि आप लोग फिरेंगे तो आप सब नीचे जा गिरेंगे। अब आप ही बताइये कि हम सबको क्या करना चाहिये?

यह सुनकर वे छहों मित्र बोले कि इसमें हमारा क्या अपराध है? आपने ही तो वापिस आने में इतना विलम्ब किया। इसलिये हम सब दुखी एवं चिन्तित हो उठे और आपको देखने के लिये चल दिये। उसका यह परिणाम आया है कि हम सब आपत्ति में फँस गये हैं। अस्तु, जो होना था सो हो गया। अब आप हमारी एक बात स्वीकार करिये। वह यह है कि हम सब तो भाग्यहीन हैं और आप हैं परोपकारी, धर्मात्मा एवं भाग्यशाली महापुरुष। इसलिये यदि हम लोगों की मृत्यु हो जाय तो कोई चिन्ता नहीं, किन्तु आप चिरंजीवी रहें, यही हमारी भावना है। इसलिये लौटते हुये मरण या अन्य कोई आपत्ति आयेगी तो उसे सहने के लिये हम तैयार हैं।

तब चारुदत्त ने कहा कि मित्रो! आप यह क्या कह रहे हैं? तनिक विचार तो करिये, कि एक का मरना अच्छा है या छह का? मेरे अकेले के

लिये आप छह का मरण हो यह मुझे या किसी को भी इष्ट नहीं हो सकता। इसलिये मुझे ही लौटने दीजिये। यदि मेरा मरण हो जाय तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। किन्तु आप सबकी जीवन-रक्षा होनी चाहिये। अब पश्चाताप या सोच विचार करने से कोई लाभ नहीं है। भवितव्य बड़ा बलवान होता है। इसलिये जो होना था सो हो गया और जो होना है वह होकर ही रहेगा। इसमें हम या आप क्या कर सकते हैं?

समस्त संसार दैवानुसार चक्कर लगा रहा है। मनुष्य जैसा जो शुभ या अशुभ कर्म उपार्जन करता है उसी प्रकार उसे उसका फल भोगना पड़ता है। कर्म के बिना न तो कोई कुछ दे सकता है और न ले सकता है। जिस जीव का जैसा कर्मोदय होता है उसे वैसे ही सहायक निमित्त भी मिलते हैं। यद्यपि सुख दुख देने वाला कोई वास्तव में मालूम नहीं पड़ता, फिर भी इतना तो निश्चित है कि यह सब विधि का ही विधान है। यह जीव चारों गतियों में भ्रमण करता है, फिर भी पुण्य और पाप तो उसके साथ ही लगा रहता है। भवितव्य को कोई भी नहीं मिटा सकता। कर्मोदय के अनुसार इस जीव को मन, वचन, काय से सुख दुख भोगना पड़ते हैं।

इस प्रकार अनेक तरह से समझाकर चारुदत्त ने उन सबको धैर्य बन्ध ााया और णमोकार मन्त्र का जप करके धीरे से अपने एक पैर की अंगुली मार्ग में टिकाकर और सम्पूर्ण शक्ति से अपने शरीर को साधकर अपने बकरे को बड़ी ही सावधानी से फिरा लिया और ऊपर की ओर चल दिये। उनके पीछे-पीछे वे छहों मित्र भी हो लिये, थोड़ी देर बाद वे सब पहाड़ के ऊपर पहुँच गये और आनन्दपूर्वक वहाँ ठहर गये। *

बकरों का वध

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।

* यहाँ तक का वर्णन हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश में नहीं हैं यहाँ तो मात्र चारुदत्त और रुद्रदत्त इन दो का ही जिकर है। रुद्रदत्त ने दोनों बकरों को मार कर मसकें बनाई थीं। और दोनों बैठकर पक्षियों द्वारा रत्नद्वीप गये थे। मगर रुद्रदत्त को पक्षी ने बीच में ही कहीं पटक दिया और चारुदत्त को रत्नद्वीप में ले गये मार्ग में लौटने आदि का कोई कथन नहीं है।

स भेयसां कथमिवेकननिधिर्महात्मा,
पापं करिष्यति धनाथमवैरिजुष्टम्।।

कुछ समय के बाद चारुदत्त ने रुद्रदत्त से कहा कि जिन मंदिर कहाँ है? चलिये उसका पता लगाकर दर्शन करने चलें। तब रुद्रदत्त ने विचार किया कि यदि चारुदत्त से सत्य बात कह दी जायेगी कि इन बकरों को मारकर अन्य द्वीप में जाना है तो वह बकरों को नहीं मारने देगा। कारण कि वह धर्मात्मा है। वह धन की इच्छा से बकरे का वध करना कभी भी पसन्द नहीं करेगा। इतना नहीं किन्तु यदि उसे बकरे के वध की बात भी मालूम हो जायेगी तो वह बहुत दुखी होगा। इसलिये कोई दूसरा उपाय सोचना चाहिये।

यों विचार कर रुद्रदत्त ने जिन मंदिर की बात को टाल दिया और कहा कि कुमार! जिनमंदिर यहाँ से कुछ दूरी पर है। वहाँ तक जाने की अभी मुझ में शक्ति नहीं है। संकुचित मार्ग से आने के कारण मेरा शरीर बहुत शिथिल हो गया है। इसलिये थोड़ी देर आराम कर लेना चाहिये। कुछ निद्रा लेने के बाद हम सब जिन मन्दिर के दर्शन करने चलेंगे। चारुदत्त ने कपटजाल को न पहिचानकर काका की बात स्वीकार कर ली और सातों मित्र एक वृक्ष के नीचे सो गये। *

चारुदत्त के मन में कोई कपट नहीं था इसलिये वह तो वास्तव में ही सो गये थे, किन्तु बाकी के छहों मनुष्य कपटी एवं पापात्मा थे, इसलिये सोने का बहाना लिये पड़े रहे। जब उन्हें मालूम हुआ कि चारुदत्त सो गया है तब वे सब उठे और अपने-अपने बकरों को मार डाला। उन दुष्टों को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये या द्रव्य लोभ के सामने बकरों की हत्या करते समय तनिक भी दया नहीं आई।

वास्तव में जो मनुष्य लोभ से अन्धा होता है वह पाप पुण्य का विचार ही नहीं करता। लोभांध के हृदय में दया लेश मात्र भी नहीं होती और वह सदा कुकर्म करने में तत्पर रहता है। लोभी के न तो कोई क्रिया कर्म का विचार होता है और न उसके बुद्धि विवेक ही रहता है। लोभी

---

* हरिवंशपुराण में ऐसी कोई बात नहीं है। उसमें तो लिखा है कि रुद्रदत्त ने चारुदत्त से बकरा मारने की बात स्पष्ट कही थी और चारुदत्त के मना करने पर भी जबरदस्ती दोनों बकरे मार डाले थे। जिनमें जिन के दर्शन करने का प्रलोभन देने की कोई बात नहीं है।

मनुष्य को धर्मध्यान का तो विचार ही नहीं आता। और न उसे सत्य संयमादि का ही ज्ञान रहता है, इसी प्रकार लोभांध होकर ही रुद्रदत्त आदि को उन बिचारे निर्दोष बकरों का वध करते हुये तनिक भी दया नहीं आई।

उस दुष्यात्मा रुद्रदत्त ने 6 बकरों का वध होने के बाद चारुदत्त के बकरे को मारने का विचार किया। और हाथ में छुरी लेकर उसके गले पर चला दी। वह पापी धीरे-धीरे छुरी चला रहा था और बकरा जोर-जोर से मिमया रहा था। जब आधा गला कट चुका तब उस बकरे की आवाज सुनकर चारुदत्त की नींद खुल गई और देखा तो 6 बकरे मरे पड़े हैं तथा सातवां अधमरा हो चुका है। उस समय चारुदत्त के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उनने तुरन्त ही रुद्रदत्त के हाथ से छुरी छीनकर फेंक दी। और उसकी इस दुष्टता की निन्दा करने लगे।

उधर चारुदत्त के बकरे के प्राण निकल रहे थे। वह बिचारा कातर दृष्टि से चारुदत्त की ओर टगर-टगर देख रहा था। उसे देखकर चारुदत्त की आंखों में आंसू आ गये और हृदय भर आया, मगर उसे बचाने का उनके पास कोई उपाय नहीं था। फिर भी उसकी शांति के साथ मृत्यु हो और उसे सुगति प्राप्त हो इसलिये उसे पंच नमस्कार मंत्र सुनाया और सन्यास धारण कराया। वास्तव में जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवान के उपदेश का रहस्य समझने वाले हैं उनका जीवन परोपकार के लिये ही होता है। * चारुदत्त द्वारा प्रदत्त णमोकार मंत्र के प्रभाव से वह बकरा मरकर पहले स्वर्ग में देव हुआ।

वास्तव में इस महामंत्र का बहुत बड़ा प्रभाव है। इसी के द्वारा स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है और इसी से संसार भ्रमण छूट जाता है। इस णमोकार महा मंत्र का जाप करने से दुःख द्वंद दूर हो जाते हैं और इसी के द्वारा इच्छित सुखों की प्राप्ति होती है तथा इसी के प्रभाव से समस्त पापों का नाश होता है। संसार सागर से पार लगाने वाला एक यही महायान है। तथा कर्म काठ को जलाकर भस्म करने के लिये यही एक महा अग्नि है। तात्पर्य

---

* चारुदत्तस्तदा तस्मै छागायोच्चैः सुखप्रदान्
सारपंचनमस्कारान् संन्यासं च प्रदत्तवान्।।
धर्मिणो येऽव वर्तन्ते ज्ञातश्रीजिनमन्दिरः।
नित्यं परोपकाराय सन्ति ते परमार्थितः।।

यह है कि णमोकार महामंत्र का प्रभाव अवर्णनीय है। ऐसा कोई भी शुभ कार्य नहीं है जो इसके प्रभाव से नहीं होता हो। इसलिये सबको णमोकार मंत्र का जप करना चाहिये। श्री अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांच परमेष्ठियों का निरंतर स्मरण करते रहना चाहिये।

बकरों का इस प्रकार वध हुआ जान कर चारुदत्त को बहुत दुःख हुआ और वह वहीं बैठकर रुद्रदत्त की खूब निन्दा करने लगे। रुद्रदत्त ने भी चुपचाप चारुदत्त की फटकारें सुन लीं और फिर बोला कि भाई! जो होना था सो हो गया। यह कार्य तो लाचारी की अवस्था में करना पड़ा है। इसके सिवाय और दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं था। इस प्रकार अनेक तरह से समझाया, फिर भी चारुदत्त के चित्त में शांति नहीं हुई और वह उदास होकर बैठे रहे।

मसकों द्वारा आकाश गमन

दुष्टात्म रुद्रदत्तोऽसौ समुद्रे पतितस्तदा।
मृत्वा स दुर्गतिं प्रापक भवेत् पापिनां शुभम्।।

उधर उन सब लोगों ने बकरों का चमड़ा उठाया और उल्टा करके मसक बना ली। मसक के भीतर तो रोम कर लिये और ऊपर गीला मांस कर लिया। ऐसा इसलिये किया था कि जिससे भेरुड़ पक्षी इसे मांसपिण्ड समझकर वहाँ से उठा ले जावें। चारुदत्त ने बहुत चाहा कि मैं यहाँ से अन्यत्र चला जाऊँ और इस मसक में नहीं बैठूं। किन्तु अन्यत्र जाने का कोई मार्ग ही नहीं था। इसलिये लाचार होकर उन्हें भी उस मसक में बैठना पड़ा। वे सब अपनी-अपनी मसक में छुरी लेकर बैठ गये भीतर बैठने के बाद मसकों का मुँह सी लिया। इस प्रकार मसकों में घुसकर वे सब चुपचाप उन्हीं में बैठे रहे।

थोड़ी देर के बाद वहाँ से उड़ते हुये सात भेरुण्ड पक्षी आये * उनमें से एक तो काना था और छह दो-दो नेत्रवाले थे। उनने पर्वत पर पड़ी भातड़ी देखीं और उन्हें मांस पिण्ड समझकर प्रसन्न हो गये। और

* आराधरा कथाकोश में सात पक्षियों का कथन नहीं है, किन्तु उसमें मात्र चारुदत्त और उसके काका रुद्रदत्त के जाने का ही कथन है। उनके दो ही बकरे थे और दो ही पक्षी उन्हें उठाने आये थे।

यथा- छागायोः श्रर्मभस्त्रायां प्रविश्य स्थितौ ततः।
रत्नद्वीपात्समागत्य ततः भेरुण्डपक्षिणौ।।

दौड़कर छह पक्षियों ने अपनी अपनी चौंच से एक-एक मसक उठा ली। उसके बाद एक काने पक्षी ने चारुदत्त की मसक उठाई। और फिर वे सातों अपने देश की ओर उड़ गये।

वे सब पक्षी आकाश मार्ग में उन मसकों को लिये हुये उड़ते-उड़ते समुद्र के बीच में पहुँचे। ऊपर महान् आकाश था और नीचे अपरिमित महासागर! दैव योग से उन्हें एक और पक्षी मार्ग में मिल गया। उसके पास कोई खाद्य पदार्थ नहीं था। और सात पक्षी अपने मुँह में कुछ लटकाये हुये उड़ते जा रहे थे। उन्हें देखकर उस पक्षी को ईर्षा उत्पन्न हुई और वह भूखा भी था, इसलिये उन पक्षियों के पास गया। किन्तु जब उसने देखा कि ये सब बलवान हैं तब उसका साहस जाता रहा। फिर भी एक काने पक्षी को देखकर उसे कुछ साहस आया और वह उसके साथ लड़ने लगा। तथा उस मांस पिण्ड को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। **

तौ समादाय चंचुभ्यां रत्नद्वीप विनिर्गतौ।

यहा पर 'छागयोः' 'तौ' 'भेरुण्डपक्षिणौ' इत्यादिसभी पद 2-2 कीसंख्या के स्पष्ट सूचक हैं।

इसी प्रकार हरिवंश पुराण में बाकी के पांच मित्रों का कोई उल्लेख नहीं है। उसमें मात्र चारुदत्त और रुद्रदत्त के जाने का ही वर्णन है। उनके दो बकरे थे, दो ही मसकें बनाई थी, दो ही पक्षी आये थे और उन दोनों को ही उठा ले गये थे। यथा-

भारुण्डैतुण्डा भ्यां नीते विहायसा।

भस्त्रा काणेन मेऽयत्र नीत्वा क्षिसा क्षितौ ततः।।

यहाँ पर 'भारुण्डैः (!)' बहुवचन है किन्तु 'तुण्डाभ्यां' द्विवचन है और 'भस्त्रे नीते' भी द्विवचन में आया है। इससे सिद्ध है कि दो ही मसकें थीं और वे दो चोंचों के द्वारा उठाई गई थीं। ऐसा होने से 'भारुण्डै (!)' बहु वचनान्त प्रयोग अशुद्ध प्रतीत होता है। बहुत से पक्षियों ने मिलकर दो मसकें उठाई हों सो ठीक नहीं है। कारण कि चारुदत्त मसक मात्र एक काणा पक्षी ही ले गया था। इससे मालूम होता है कि केवल दो ही पक्षी आये थे। चारुदत्त चरित्र में सात पक्षियों के आने की बात सात मसकों के कारण लिखी गई प्रतीत होती है।

*** हरिवंशपुराण में न तो अन्य पक्षी से युद्ध की बात है और न परस्पर ही युद्ध का जिकर है। आराधना कथाकोश में भी अन्य पक्षी के आने का कथन नहीं है। किन्तु रुद्रदत्त और चारुदत्त के पक्षियों में आपस में लड़ने का कथन है जिससे रुद्रदत्त की मसक समुद्र में ही जा गिरी और वह मरकर कुगति में गया।*

जब उस काने पक्षी का बस नहीं चला तब उसने वह मसक समुद्र में छोड़ दी फिर थोड़ी देर बाद उठा ली, और तब वह पक्षी पुनः लड़ने को आया तब फिर उसी प्रकार उस मसक को नीचे डाल दी। इस प्रकार तीन बार चारुदत्त की मसक पानी में गिरी, और फिर अन्त में वह पक्षी चौथी बार उस मसक को उठाकर उड़ता हुआ रत्नद्वीप में ले गया और वहाँ रत्न पर्वत की शिखर पर जा रखी। थोड़ी ही देर में जब वह पक्षी उस मसक को मांस पिण्ड जानकर खाने का प्रयत्न करने लगा तब शीघ्र ही चारुदत्त ने छुरी लेकर वह मसक काट डाली और बाहर निकल आये। और भेरुड पक्षी उसमें से मनुष्य को निकलता हुआ देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ और तुरन्त ही वहाँ से भाग गया। और चारुदत्त उस स्थान को आश्चर्य चकित होकर देखने लगे।

*इधर तो चारुदत्त अभीष्ट स्थान पर आ गये किन्तु उधर वे छहों पक्षी अपनी मसकों को अन्यत्र ले गये। और जब उनके खाने का प्रयत्न करने लगे तब उन छहों मनुष्यों ने छुरी से उन्हें फाड़ डाला तथा वे सब बाहर निकल आये। बाहर निकलकर सब एक दूसरे से मिले, किन्तु जब सातवें चारुदत्त को नहीं देखा तब वे सब चिंतित और दुःखी हुये। रुद्रदत्त उन मित्रों को साथ लेकर इधर-उधर चारुदत्त की खोज में फिरने लगा। किन्तु न तो इन्हें चारुदत्त का पता लगा और न चारुदत्त को उनका ही पता था। इसलिये वे सब दुःखी एवं व्याकुल होकर जंगल के फल फूल खाते हुये यत्र-तत्र घूमते फिरे। किन्तु चारुदत्त का पता न लगने से उनका दुःख बढ़ता ही गया। वे बिचारे कभी अपने कर्म को दोष देते थे तो कभी विह्वल होकर अत्यन्त दुःखी हो जाते थे। इस प्रकार रुद्रदत्त आदि छह मित्र इधर चारुदत्त के न मिलने से दुःखी हो रहे थे और उधर चारुदत्त रत्न पर्वत पर उन अपने मित्रों और काका रुद्रदत्त को न पाकर चिंतित हो रहे थे।**

** इस कथा में रुद्रदत्त आदि छह मनुष्यों को अन्यत्र ले जाने, तथा चारुदत्त के वियोग में फिरने की बात है। किन्तु आराधना कथाकोष में लिखा है कि दुष्टात्मा रुद्रदत्त दोनों पक्षियों के युद्ध होने के कारण समुद्र में गिर पड़ा और वहीं मरकर दुर्गति को प्राप्त हुआ।*

यथा- दुष्टात्मा रुद्रदत्तोऽसो समुद्रे पतितस्तदा।
मृत्वा स दुर्गति प्राप क भवेत्यापिनां शुभम्।।

जिनपूजा और मुनिदर्शन

सम्यक्त्वद्रुमसिंचने शुभतरा कादम्बिनी बोधदा।
भव्यानां वरभारतीव नितरां दूती सतां सम्पदे।।
मुक्तिप्रोन्नतमंदिरस्प सुखदा सोपानपंक्तिः शुभ।
पायाद्वस्तु समस्तसौख्यजननी पूजा जिनानां सदा।।

बहुत कुछ सोच विचार करने के बाद चारुदत्त वहाँ से उठे और धीरे-धीरे आगे को बढ़े। कुछ ही दूर जाने पर उन्हें रत्नराशियां दिखाई दी जिनकी जगमगाहट सूर्य किरणों से भी अधिक प्रभावक थी। उसे देखकर चारुदत्त की और भी अधिक उत्कण्ठा बढ़ी और वह आगे बढ़ते गये। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक सुन्दर जिनालय के दर्शन हुये। उनकी शोभा देखकर चारुदत्त के हर्ष का पार नहीं रहा। उस जिनालय की भीतें स्वर्णमयी थी। उनमें प्रकाशमान रत्न जड़े हुये थे। तथा बीच-बीच में हीरा, पन्ना, लाल आदि नग जड़े हुये थे। दरवाजों पर मोतियों की बन्दनवारें लटक रही थीं। तात्पर्य यह है कि वह जिनमन्दिर मनुष्यों की तो बात ही क्या, देवों तक के मन को मुग्ध कर लेने वाला था।

चारुदत्त ने दर्शन के लिये उस मन्दिर में प्रवेश किया। प्रवेश करते ही भीतर की शोभा देखकर वह अपने तमाम पूर्व दुःखों को भूल गये और उनके रोम-रोम में आनन्द व्याप्त हो गया। जिस प्रकार सूर्य को देखकर कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार मन्दिर में मनोज्ञ जिनप्रतिमा के दर्शन कर चारुदत्त का हृदय कमल प्रफुल्लित हो गया। वे अपने मन में फूले न समाये। और हाथ जोड़कर जिन प्रतिमा को नमस्कार किया तथा तीन प्रदक्षिणा देकर अपना जन्म सफल बनाया। उस समय जिन बिम्ब के समक्ष हाथ जोड़कर चारुदत्त खड़े हो गये और गद्गद होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे-

स्तुति

जय जय परमेश्वर परमदेव, मन बचतन करत नित करौं सेव।
कीनो छिन में अघकरम नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।।1।।
शुभ समवशरन शोभा अपार, जिन इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहंत देव, वन्दों मन वच तन करौं सेव।।2।।

जय जय मिथ्यातम हरन सूर, जय जय शिव तरुवर के अंकुर।
जय काम विनाशनहार देव, जय मोहमल्ल मलदलन देव।।3।।
तुम दर्शनतैं सुख है अनन्त, तातैं वन्दौं शिवरमनि कंत।
जय सुरग मुकति-दाता जिनेश, जय कुमति हरन भवभयकलेश।।4।।
जय जय कंचनसम तन दिपंत, जय कोटि दिवाकर मलिन कांत।
ऐसे श्री जिनके दरश पाय, अघवृन्द दूर छिनमैं पलाय।।5।।
ऐसे श्री जिनको वदन देख, मो गयो आज पातक विशेख।
तुम धन्य जिनेश्वर देव आय, तिनके सुमरन खग परत पाय।।6।।
धन आज मोहि लोचन विचार, तुम मूरत देखी हम निहार।
धन मस्तक आज पवित्र मोहि, नमियों पदकमलनि देव तोहि।।7।।
धनि धन्य आज मेरे जु पांय, तुम लौं प्रभु पहुँच्यो आज आय।
धन मेरे आज पवित्र हाथ, तुम परसे त्रिभुवन के सुनाथ।।8।।
धन आनन मोहि पवित्र आज, रसना कर गुन गाये समाज।
प्रभु आजहिं गयो कलंक मोह, देखी मूरत सुखकार तोय।।9।।
अति मुदित भयो मुझ हियो संत, बहुविध स्तुति जिनकी करंत।
स्तुति करतैं नहिं उर अघाय, कर जोरि भाल निज नाय नाय।।10।।

चारुदत्त ने इस प्रकार स्तुति करके भक्ति भाव से हर्ष पूर्वक जिनपूजा की और कुछ समय तक वहीं बैठकर वह वहाँ से उठे और बाहर को चल दिये। मगर उन्हें आस-पास में कोई भी मनुष्य दिखाई नहीं दिया। इसलिये वह कुछ विचार में पड़ गये। थोड़ी ही दूर आगे जाने पर उन्हें एक गुफा दिखाई दी। चारुदत्त उसमें चले गये। वहाँ एक मुनिराज विराजमान थे। उन्हें देखकर चारुदत्त को बहुत हर्ष हुआ और निकट जाकर इस प्रकार स्तुति करने लगा :-

जय जय गुरु भव अघ हरना, जय जय सुख सम्पति करना।
जय जय कंदर्प जु दलना, जय मोह महामद मलना।।1।।
जय जय इन्द्रिय दें दण्ड, जय पंच महाव्रत मण्ड।
जय परिग्रहतैं सु उदासी, जय सप्त तत्वारथ भासी।।2।।
जय समता राखन चित्त, देखत इकसे अरिमित्त।
अठ्वीस मूल गुणधारी, पुन सहत परीषह भारी।।3।।

जिनके वच है सुख खानी, जिन संग कुगतिकी हानी।
तजि कुगति सुमति रुचि गहिये, तुम संगति शिवसुख लहिये।।4।।
गुरु बिन नहिं और सहाई, जय जय परमारथ भाई।
जय जय जय आनंदकारी, जय जय करुणानिधि धारी।।5।।

इस प्रकार स्तुति करके चारुदत्त मुनिराज के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े रहे तब मुनि महाराज 'धर्मवृद्धि' कहकर बोले– 'चारुदत्त! तू कुशल तो है? तेरा यहाँ कैसे आना हुआ?' मुनिराज के इस प्रकार वचन सुनकर चारुदत्त आश्चर्यचकित हो गये और बोले– मुनीश्वर! आपने मुझे पहले कहाँ देखा है? क्या आप मुझे पहिचानते हैं? आपके श्रीमुख से अपना नाम सुनकर मैं बड़े ही अचम्भे में पड़ा हूँ। क्या आप दया करके मेरा समाधान करेंगे?

उपकृत जीवों से मिलाप

परोपकारिणो लोके, सन्ति ये बुधसत्तमाः।
कैः सुराद्यैर्न पूज्यंते, महाभक्तिभरैश्च ते।।

चारुदत्त को आश्चर्यचकित देखकर मुनिराज ने कहा– वत्स! मैं अमितगति विद्याधर हूँ। तुम अभी भूले नहीं होंगे कि मुझे चम्पापुर के बाग में एक वृक्ष की शाखा पर मेरा दुष्ट मित्र कीलकर ओर मेरी पत्नी को लेकर भाग गया था, उस समय तुमने ही मुझे छुड़ाकर मेरे प्राण बचाये थे और मैं वहाँ से छूटकर अपनी पत्नी को उस दुष्ट के पास से छुड़ा लाया था। * इस प्रकार तुम्हारे ही प्रसाद से मेरा जीवन सुखी बन सकता था। उसके बाद मैंने बहुत समय तक राज्य किया और विविध विभूतियों का उपभोग किया। राज्य सुख के अतिरिक्त पुत्र पौत्रों का भी खूब सुख भोग और अन्त में निमित्त मिलने पर यह दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। **

---

* चारुदत्त चरित्र में पिछले पृष्ट पर लिखा गया है कि विद्याधर अपनी पत्नी को छुड़ाने के लिये अपने ग्राम में ही गया था और वहाँ से अपने दुष्ट मित्र के पास से छुड़ा लाया था। हरिवंशपुराण में उत्तर दिशा से छुड़ा लाने की बात है। किन्तु आराधना कथाकोश में 'कैलाश' पर्वत से छुड़ा लाने का कथन है।

यथा– ततः कैलाशनामं, गत्वाहं वेगतो गिरिम्।
धूमसिंहं खगं जित्वा, गृहीत्वा कामिनीं निजाम्।।

** हरिवंशपुराण में बहुत अच्छे ढंग से परिचय दिया गया है। उसमें

इस प्रकार मुनि महाराज ने अपना सारा पूर्व वृत्तान्त सुनाया। उसी समय मुनिराज (विद्याधर) के दो पुत्र सिंहग्रीव * और बाराहग्रीव विमान में बैठकर वहाँ मुनि वन्दना के लिये आये। पहले वे जिनमंदिर में गये और वहाँ जिन प्रतिमा को नमस्कार स्तुति की। ** पश्चात् पूजा, नृत्य, भजनादि करके वे हर्ष और उत्साहपूर्वक मुनिराज के पास गये और हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे :-

संसार सागर से पार करने वाले जहाज समान हे मुनिराज! तुम धन्य हो। जो तुम्हारे चरण-कमलों की भक्ति करते हैं वे तत्काल ही अशुभ कर्मों का नाश करते हैं। निशदिन तुम्हारा स्मरण करने से प्रत्येक आत्मा क्रमशः मुक्ति प्राप्त कर सकता है। हे भगवन्! तुम्हीं सच्चे उद्धारक गुरु हो। तुम्हारी सेवा भक्ति पाप को नाश कर स्वर्ग मोक्ष को देने वाली है। तुम करुणा सागर हो, गुणों के भण्डार हो, राग द्वेष रहित हो, बाईस परीषहों के विजेता हो, पर्वतों के शिखर और कन्दराओं में रहने वाले हो और संसार से उदासीन किंतु सबको सुख देने वाले हो। हे मुनिराज! यदि सच पूछो तो हमारे लिए तुम्हारे सिवाय अन्य कोई सुखदाता और भवसागर से पार लगाने वाला नहीं है।

मुनिराज की पूर्व स्थिति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार है:- "मैं वहीं 'अमितगति' नाम का विद्याधर हूँ जिसको कि एक समय चम्पापुरी में बैरी ने कील दिया था, और उसकी तुमने रक्षा की थी। तुम्हारे यहाँ से आने के थोड़े ही दिन बाद मेरे पिता को वैराग्य हो गया। मैं परम सम्यग्दृष्टि था। मेरे पिता ने मुझे राज्य सौंप दिया और आप 'हिरण्यकुम्भ' नामक गुरु के चरण कमलों में दिगम्बर दीक्षा से दीक्षित हो गये। मेरी 'विजयसेना' और 'मनोरमा' नामकी दो पटरानियां थीं। विजयसेना की 'गंधर्वसेना' नाम की पुत्री हुई। और मनोरमा के बड़ा पुत्र 'सिंहयश' और छोटा पुत्र 'वराहग्रीव' नाम का हुआ। ये दोनों पुत्र विनयादि गुणों के मंदिर हैं। एक दिन मुझे भी संसार से उदासीनता हो गई। मैंने बड़े पुत्र को तो राज्य सौंप दिया और छोटे को युवराज बना कर महामुनि (अपने पिता) के पास जाकर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। चारुदत्त! इस द्वीप का नाम 'कुम्भकटक' है, इसके चौतरफा समुद्र हैं और यह 'कर्कोटक' नाम का विशाल पर्वत है। इसलिये अब तुम बताओं कि यहाँ तुम कैसे आये?" इत्यादि।

हरिवंशपुराण के इस कथन से विद्याधर के पिता और निजके विद्यागुरु, विद्याधर की रानियां, उनके पुत्र, द्वीप का नाम और पर्वत का नाम आदि ज्ञात होता है। यह बात इस चारुदत्त चरित्र में नहीं है आराधना कथाकोष में भी कुछ विशेष वर्णन है।

* हरिवंश पुराण और अराधना कथाकोष में 'सिंहयश' नाम आया है।

** हरिवंश पुराण और आराधना कथाकोष में मंदिर में जाने की कोई बात नहीं है। किन्तु विमान से सीधे उतर कर मुनिराज के पास आने का कथन है।

इस प्रकार दोनों विद्याधर-पुत्रों ने मुनिराज की खूब ही स्तुति और भक्ति की। तब मुनि महाराज ने सबको कल्याणकारी उपदेश दिया। बाद में उन अपने पुत्रों से मुनिराज ने कहा- देखो, यह चारुदत्त है, यह जो कहें सो तुम करना और इनकी इच्छापूर्ति करना।

यह सुनकर दोनों पुत्रों ने पूछा कि यह चारुदत्त कौन हैं? कहाँ के रहने वाले हैं? इनके माता पिता के क्या नाम हैं? इनका यहाँ कैसे आना हुआ? और आप इन्हें कैसे जानते हैं? कृपया इनका पूरा परिचय दीजिये। तब मुनिराज ने आदि से अन्त तक सब हाल सुनाकर चारुदत्त का पूरा परिचय कराया। एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर वे सब बहुत प्रसन्न हुये।

उधर चारुदत्त के द्वारा दिये गये मन्त्र के प्रभाव से उस रसकूप का वह मनुष्य और रुद्रदत्त के हाथ से मारा गया बकरे का जीव दोनों प्रथम स्वर्ग में देव हुये थे, उनने अवधिज्ञान से अपनी पूर्व बातों को प्रत्यक्षवत् स्पष्ट जाना और कहा कि यह स्वर्गसम्पदा चारुदत्त के प्रसाद से ही हमें मिली है। अब अपना कर्तव्य है कि चारुदत्त के पास जाकर उसके चरण कमलों के दर्शन करें।

*यह विचार कर उनने एक सुन्दर विमान तैयार किया। वह विमान स्वर्ण, हीरा, माणिक और मोतियों से सुशोभित मालूम होता था। उसमें रुनझुन रुनझुन करती हुई घंटियां शोभा दे रही थीं। और ध्वजायें फहरा रही थीं। इस प्रकार मनोहर विमान में बैठकर वे रत्नशैल पर गये। वहाँ जाकर जिनमन्दिर की पूजा की और फिर मुनिराज के पास गये जहां चारुदत्त कुमार बैठे थे। वहाँ पहुँचते ही उन देवों ने * मुनिराज को नमस्कार न करके पहले चारुदत्त को नमस्कार किया और फिर मुनि महाराज की वन्दना की।*

*यह अक्रमिक नमस्कार देखकर सिंहग्रीव ने कहा ** कि हे स्वर्गवासी देवो! आप भले ही देव कहलाते हैं किन्तु मालूम होता है कि स्वर्ग में विवेक प्राप्त नहीं किया है। यह सुनकर देवों ने कहा – वीर पुत्रो! तुम हमें अविवेकी क्यों कह रहे हो? हमने ऐसा कौन सा अविवेक का कार्य किया है?*

** आराधना कथाकोश में मात्र एक ही देव (बकरे का जीव) का आना लिखा है।*

*** आराधना कथाकोश में लिखा है कि नमस्कार करते समय चारुदत्त ने ही देव को रोका था। सिंहग्रीव ने कुछ नहीं कहा था।*

तब सिंहग्रीव ने कहा कि क्या यह कम अविवेक है जो आपने पहले गृहस्थ को नमस्कार किया और फिर बाद में गुरु महाराज की वन्दना की? अच्छा, आप ही कहिये कि क्या आपने यह उचित किया है? यदि आप कोई युक्तिसंगत कारण बता सकें तो मैं भी मानने के लिये तैयार हूँ। तब उस देव ने जो बकरे का जीव था अपने पूर्वभव का सारा वृत्तान्त इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया –

उपकृत देवों का पूर्वभव

पूर्व कृतोपकारस्य, पुंसः प्रत्युपकारतः।
कृतित्वमुपकार्यस्य, नान्यथेति बिदो विदुः।।

*बहुत ही धन सम्पत्ति एवं वैभवयुक्त बनारस नगरी है। वहाँ के निवासी दिनरात आनन्द विनोद में अपना समय व्यतीत करते हैं। उसी नगर में वेद पुराण और व्याकरण का ज्ञाता एक 'सोमशर्मा' नाम का ब्राह्मण था। उसकी स्त्री का नाम 'सौमिल्ला' था। वे दोनों बड़े ही आनन्दपूर्वक अपना गृही जीवन व्यतीत करते थे। उनके दो पुत्रियां थीं। एक का नाम था 'सुभद्रा' * और दूसरी का नाम था 'सुलभा'।*

जब वे दोनों लड़कियां बड़ी हुयी तब उन्हें पढ़ने के लिये पाठशाला में भेजा गया। कुछ समय बाद वे लड़कियां पढ़कर बहुत प्रवीण हो गयीं और वादविवाद करने में खूब ही चतुर हो गईं। उन्हें अपने ज्ञान का कुछ मद भी था। इसलिये वे प्रत्येक व्यक्ति से शास्त्रार्थ करने के लिये सदा तत्पर रहती थीं। कुछ समय के बाद जब वे लड़कियां विवाह योग्य हुयीं तब उनने सन्यासिनी होकर निश्चय किया कि या तो हम इसी प्रकार साधु अवस्था में अपना जीवन पूर्ण कर देंगी या फिर उसके साथ विवाह करेंगी जो हमें शास्त्रार्थ में हरा देगा।

यह बात कानों कान सर्वत्र फैल गई और लोगों में इसकी खूब चर्चा होने लगी। धीरे-धीरे यह बात याज्ञवल्कि नाम के तपस्वी तक पहुँची। वह तपस्वी बहुत ही विद्वान था। तर्क छन्द और वेदादिक का ज्ञाता एवं

* हरिवंशपुराण में 'भद्रा' नाम आया है।

वादविवाद में बहुत ही चतुर था। उसने निश्चय किया कि मैं उन लड़कियों का ज्ञानमद उतारूँगा। यह विचार कर याज्ञवल्कि बनारस की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचने पर उन सन्यासिनी लड़कियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ। बहुत कुछ वाद विवाद के बाद तपस्वी याज्ञवल्कि ने सुलभा को पराजित कर दिया और उसके साथ विवाह कर लिया।

सुलभा के साथ ही उसकी बहिन सुभद्रा भी उस तपस्वी के आश्रम में रहने लगी। और वे आनन्द पूर्वक कालयापन करने लगीं। कुछ समय के पश्चात् सुलभा के पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिये सन्यासी याज्ञवल्कि चिन्ता में पड़ गया और विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये? इस जंजाल में फंसना ठीक नहीं था। अभी इससे निवृत्त होने का एक मार्ग है। ये विचार कर वह उस लड़के को एक पीपल के वृक्ष के नीचे रख आया ओर स्वयं सुलभा को लेकर कहीं अन्यत्र चला गया।

जब सुलभा की बहिन सुभद्रा ने उन दोनों को वहाँ नहीं पाया तब वह इधर-उधर उन्हें ढूंढ़ने लगी। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उसे पीपल के वृक्ष के नीचे एक बालक पड़ा हुआ दिखाई दिया। सुभद्रा ने उसे अपनी बहिन का पुत्र जानकर उठा लिया और अपने स्थान पर ले गई। सुभद्रा ने उसे पीपल के नीचे पड़ा हुआ पाया था इसलिये उसका नाम 'पिप्पलादित्य' रखा * और वहीं प्रेम से उसका पालन पोषण किया। जब वह कुछ बड़ा हुआ तब सुभद्रा ने स्वयं ही उसे पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। कुछ ही समय के बाद वह बालक तर्क, छन्द, व्याकरण और काव्य का प्रकाण्ड वेत्ता हो गया। वास्तव में जिसकी माता और संरक्षिका विदुषी हो उसका बालक क्यों न विद्वान होगा? पिप्पलादित्य को भी शास्त्रार्थ करने का खूब शौक था। वह यज्ञ यागादिक और क्रियाकाण्ड में भी बहुत प्रवीण था। इसलिये धीरे-धीरे उसकी भी खूब ख्याति हो गई।

एक दिन पिप्पलादित्य ने सुभद्रा से पूछा- माताजी! मेरा यह नाम

---

* हरिवंश पुराण में पिप्पलादित्य नाम 'पिप्पलाद' बताया है। यथा-

तत्रोत्तानशय भद्रः दृष्टवा स्वत्थफलादिनं।
पिप्पलादभिधानेन व्याहूयैनमवीवृघत्।।

*रखने का क्या प्रयोजन है ? * तब सुभद्रा ने उसे आदि से अन्त तक का सारा हाल सुना दिया और कहा कि तेरे माता पिता तो दूसरे ही हैं, मैंने तो तुझे मात्र पाल पोष कर बड़ा किया है, इसलिये तू अभी तक मुझे अपनी माता समझता रहा है। यह सुनकर पिप्पलादित्य के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने अपने माता पिता की निर्दयता पर बहुत ही घृणा प्रगट की और उनकी इस कर्तव्यहीनता का बदला देने का निश्चय किया। तथा सुभद्रा से आज्ञा लेकर वहाँ से चल दिया। और अपने माता-पिता को ढूंढ़ता हुआ उनके पास जा पहुँचा।*

*वहाँ पहुँचकर उसने मां बाप को अपना परिचय नहीं दिया और उनसे शास्त्रार्थ करना प्रारम्भ कर दिया, उसमें उसे विजय प्राप्त हुई। विजयी होने के बाद पिप्पलादित्य ने अपना परिचय दिया और माता पिता की मिथ्या विनयपूर्वक सेवा सुश्रुषा करने लगा। और अपने विद्याबल के प्रभाव से खूब ख्याति प्राप्त की, तथा अपने अनेक अनुयायी बना लिये। मैं (वर्तमान में देव) भी उसका जाज्ञबलि ** नाम का शिष्य हो गया था और उसके पास खूब विद्याध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद मैंने यज्ञ का प्रचार किया और अनेक बकरों का बलिदान कराया। इतना ही नहीं, किन्तु अनेक मिथ्या शास्त्रों का भी प्रचार किया। इसके फलस्वरुप अन्त में रौद्र ध्यानपूर्वक मरा और घोर नरक में गया। वहाँ पर वर्णनातीत दुःख सहन किये।*

नरकों में छेदा जाना, भेदा जाना, गर्मी, ठण्डी आदि के दुःख सहन किये। कभी शूली पर चढ़ाया जाना, कभी शस्त्रों से शरीर विदारण होना, कभी बुरी तरह पीटा जाना, कभी खौलते हुये तेल की कड़ाही में डाला जाना, कभी पानी मांगने पर गरम करके पिघलाये हुये शीशे का पिलाया

** हरिवंशपुराण में पिप्पलाद द्वारा अपने नाम का कारण पूछने की बात नहीं है, किन्तु उसने अपने पिता का नाम पूछा था और पूछा था कि क्या वे अभी जीवित हैं ? यथा -*

पारगः सर्वशास्त्राणामेकदाऽपृच्छदिस्यसौ।
मातः किमभिधानो मे पिता जीवति वा न वा।।

*** हरिवंशपुराण में 'जाज्ञबलि' नहीं कि बाग्बलि नाम आया है। यथा -*

पिप्पलादस्य शिष्योऽहं जडग्रन्थेन वाग्बलिः।
तद्दर्शनं समर्थ्याग न्नरकं घोरवेदनं।।

जाना आदि के घोर दुःख सहे। अनेक दुष्ट नारकी शरीर को छिन्न भिन्न करके उस पर खारा पानी छिड़क देते थे, उससे जो वेदना होती थी वह वर्णन नहीं की जा सकती। वास्तव में वहाँ पर दुःख के सिवाय लेशमात्र भी सुख नहीं है। करुणा का तो वहाँ नाम ही नहीं है। सब नारकी मिलकर नये नारकी पर निर्दयतापूर्वक टूट पड़ते हैं और उसे बुरी तरह मारते हैं मैंने इस प्रकार अनेक दुःख चिरकाल तक सहे और आयु पूर्ण होने पर मेरा दुखिया जीव वहाँ से निकला।

वहाँ से निकलकर भी कोई उत्तम गति नहीं मिली किन्तु बकरे का जन्म लिया। वहाँ पर भूख प्यास आदि का बहुत दुख सहन किया। इतने से ही मेरे दुख का अन्त नहीं हुआ था। इसलिये दुष्ट याज्ञिकों के हाथ में पड़कर मैं यज्ञ में होमा गया। उसके बाद भी पुनः बकरे का जन्म धारण किया। वहाँ पर भी यज्ञ में मेरा होम किया गया। फिर भी बकरे का ही भव प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक बार नहीं, दो बार नहीं किन्तु सात बार बकरे का जन्म लेना पड़ा। उनमें से छह बार तो यज्ञ में होमा गया और सातवीं बार प्राटक देश में * बकरा हुआ।

जब रुद्रदत्त बकरों को लाकर उन पर सवारी करके पहाड़ पर जा रहा था तब मैं भी चारुदत्त को लेकर पर्वत पर चढ़ रहा था। दुर्दैववशात् रूद्रदत्त ने अन्य बकरों की भांति मेरा भी गला काट डाला। किन्तु सद्भाग्य से चारुदत्त ने मेरे ऊपर दया करके मरते समय पंच नमस्कार मंत्र दिया, जिसके प्रभाव से मैं ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ। ** वहाँ पर अवधिज्ञान के द्वारा अपने उपकारी को जानकर मैं यहाँ आया हूँ। मुझे जिनधर्म का उपदेश और णमोकार मंत्र देकर स्वर्ग प्राप्त कराने वाले चारुदत्त ही मेरे आद्य गुरु हैं। इसलिये मैंने उन्हें ही पहिले नमस्कार किया है। इनने मेरा भारी उपकार किया है। भला मैं इनके इस उपकार को कैसे भूल सकता हूँ।

---

* हरिवंशपुराण में 'प्राटक' की जगह 'टंकणक' देश लिखा है। यथा –

उप्तमेऽपि च वारेऽहं देशे टंकणकेऽभवत्।
अज एव निजः पापैः प्रेरितः प्राणिघार्तजः।।

** सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। यथा –

जातोऽहं जिनधर्मेण सौधर्म विबुधोत्तमः।।
तत्प्रभावेन सौधर्मे देवो जातोऽहमद्भुतः।।

इस प्रकार एक देव के पूर्वभव कहने पर दूसरे देव ने भी अपना समस्त वृत्तान्त सुनाना प्रारम्भ किया। वह बोला कि मुझे एक परिव्राजक ने धोखे में डालकर रसकूप में पटक दिया था। उस समय चारुदत्त भी उसी प्रकार सन्यासी के जाल में फंसकर उस कुएं में उतरे। उनने मेरी मरणासन्न स्थिति देखकर मुझे धर्मोपदेश दिया और पंच नमस्कार मंत्र सुनाया। उसके प्रभाव से मैं सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ। यही कारण है कि मैं चारुदत्त को अपना आद्य-गुरु मानता हूँ और इसलिये मैंने मुनिराज से पहिले चारुदत्त को नमस्कार किया है। चारुदत्त के ही उपकार का यह फल है कि हम दोनों ऋद्धिधारी देव हुये हैं। अब आप ही कहिये कि उन्हें यदि हम दोनों ने अपना प्रथम गुरु मानकर पहले नमस्कार किया तो उसमें कौन सी अनुचित बात हुई? जिसने मुझे नगण्य अवस्था में इतना बड़ा किया है उसे हम मानपूर्वक नमस्कार क्यों नहीं करें?

यदि कोई एक अक्षर का ज्ञान करा दे, या आधे पद का ज्ञान करावे अथवा एक पद का दाता भी हो तो उसे कभी नहीं भूलना चाहिये। यदि कोई ऐसे उपकारी को भूल जाता है। तो वह महान पापी है, फिर जो अपने धर्मोपदेशक या उद्धारक को भूल जाय तो उससे बढ़कर पापी कौन हो सकता है? * इसलिये हमारा तो निश्चय है कि अपने उपकारकर्ता

---

* पापकूपे निमग्नेभ्यो घमहस्तावलम्बने।
ददता कः समो लोके संसारोत्तारणं नृणां।
अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पापी किं पुनधर्मदेशिनं।।
पूर्वै कृतोपकारस्य पुंसः प्रत्युपकारतः।
कृत्सत्वमुपक र्यस्य नान्यथेति विदो विदुः।।
तत्कृतौ शक्तिवैकल्ये कुलीनः स कथं न यः।
सद्मावै दशयैत्तस्मै स्वाधीनं विगतस्मयः।।

अर्थ - पापरूपी कूप में डूबे हुये जीवों को जो मनुष्य धर्मरूपी हाथ का सहारा देने वाला है, भला कहिये लोक में उसके समान कौन उपकारी है? एक अक्षर को आधे पद का अथवा एक पद को प्रदान करने वाले भी मनुष्य को भूल जाने वाला मनुष्य जब पातकी कहलाता है तब कल्याणकारी धर्म के उपदेश देने वाले को भूल जाने वाला तो परम पातकी समझना चाहिये। विद्वानों का मन्तव्य है कि उपकार्य मनुष्य उसी समय पुण्यवान समझा जाता है जब कि वह दुख में उपकार करने वाले अपने उपकारों का भले प्रकार प्रत्युपकार करे। यदि उपकार करने की सामर्थ्य न हो तो वह भी पुरुष उत्तम और पुण्यवान समझा जाता है जो निरभिमानी अपने उपकारी के साथ शुभ भाव प्रगट करता है।

की सदा स्तुति करना चाहिए और जिस णमोकार मन्त्र के प्रभाव से हमारा उद्धार हुआ है उसका सदा ही जाप करना चाहिये। इस प्रकार देवों के द्वारा अपने पूर्वभव का कथन और मुनिराज के पहिले चारुदत्त को नमस्कार करने का कारण जानकर सिंहग्रीव और वराहग्रीव बहुत ही हर्षित हुये।

फिर दोनों देवों ने हाथ जोड़कर चारुदत्त से कहा– हे उपकारी वीर! आपका ऋण हम कैसे चुका सकेंगे? कृपा कर मेरे योग्य कोई सेवा बताइये। आपकी सेवा करके ही हम कृतार्थ होंगे। देवों की विनयपूर्ण प्रार्थना सुनकर चारुदत्त ने कहा कि हमारे रुद्रदत्त आदि छह मित्र न जाने कहाँ मारे-मारे फिरते हैं? आप उन्हें लाकर मेरे साथ मिलाप कराइये। विशेष तो आपसे अभी हमें कोई काम नहीं है। यह सुनकर दोनों देव विमान में बैठकर आकाश में उड़ गये। और रुद्रदत्त आदि को लाकर चारुदत्त के सामने ही उपस्थित किया। *

उस समय सातों मित्र गले से गला लगाकर खूब मिले और अपने-अपने सुख दुख की सब बातें कह सुनायीं। कुशल समाचार पूछने के बाद सब लोग आनन्दित हो गये। तत्पश्चात उन दोनों देवों ने चारुदत्त से कहा कि आपको जितने द्रव्य की आवश्यकता हो सो मुझे आज्ञा दीजिये, हम उतना द्रव्य आपकी सेवा में उपस्थित कर देगें। चारुदत्त कुछ कह ही नहीं पाये थे कि सिंहग्रीव और वराहग्रीव ने देवों से कहा कि आप कोई कष्ट न करें, हम स्वयं ही चारुदत्त की इच्छा पूर्ण करेंगे और यह जो भी सेवा कहेंगे उसे हम करेंगे। इन्हें हम यथेच्छ धन देकर चम्पापुर भेज देंगे। यह सुनकर देवों ने चारुदत्त की आज्ञा ली और अपने स्थान को चले गये। *

** हरिवंश पुराण में ऐसा कोई कथन नहीं है कि चारुदत्त ने देवों से रुद्रदत्त आदि को लाने की प्रतिज्ञा की हो या देव उन्हें लाने के लिये गये हों और भेंट कराई हो। वहाँ तो मात्र इतना ही वर्णन है कि देवों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर चारुदत्त ने कहा कि अभी आप अपने-अपने स्थान पर जाइये। फिर जब कभी मैं स्मरण करूँ तब आप मेरी सहायता करना। आराधना कथाकोश में भी रुद्रदत्त आदि को बुलाने या उनसे मिलाप होने की कोई बात नहीं है। यहाँ तो इसके पूर्व ही रुद्रदत्त का समुद्र में मरण बताया गया है।*

** हरिवंश पुराण और आराधना कथाकोश में बताया है कि देवों ने जाने के पूर्व चारुदत्त को ऐसे वस्त्र भेंट किये थे जो अग्नि में न जल सकें और उत्तम मालायें, उवटन, आभरणादिये विभूषित किया था। यथा –*

वस्त्ररग्निविशोध्यैर्मा भूषामाल्यविलेपनैः।
भूषयित्वा ससत्कारमभषेतां सुभूषणैः।।
वस्त्रभरणसंदोहैश्चारुदत्तं गुणोज्वलम्।
समभ्यर्च्य पुनर्नत्वा स्वर्गलोकं गतौ मुदा।।

स्वदेश गमन

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

*इसके बाद सिंहग्रीव और वराहग्रीव ने चारुदत्त से अपने देश को चलने के लिये प्रार्थना की। चारुदत्त ने भी इसे स्वीकार किया। तब उनने एक सुन्दर विमान सजाया। यह विमान मणिमुक्तादि से जड़ित होने के कारण बहुत ही शोभित हो रहा था। उसमें मनोहर शब्द करने वाली घूंघरु और घण्टा लगे हुये थे। तथा चारों ओर ध्वजा पताकायें फहरा रही थीं। दोनों विद्याधर और चारुदत्त मुनिराज को नमस्कार करके उस विमान में बैठे और आकाश में प्रयाण किया। थोड़ी देर के बाद विद्याधरों का विमान उनके नगर के निकट पहुँचा और नीचे उतरा। **

*उस नगर की अपूर्व शोभा देखते ही बनती थी। उस पर भी विद्याधरों ने उसे और भी सुसज्जित करके देवपुरी से भी अधिक सुन्दर बना दिया। घर-घर में बन्दनबारें बांधी गईं और बाजार सजाया गया। फिर चारुदत्त ने नगर में प्रवेश किया। उन्हें नगर की शोभा देखकर बहुत ही आनन्द हुआ। विद्याधर स्वागत विधि एवं मंगलाचरण के बाद चारुदत्त को अपने महलों में ले गये। और बड़े ही वट-बाट के साथ आदर सम्मान करके सुख एवं सन्तोष प्राप्त किया। ***

चारुदत्त वहाँ बड़े ही आनन्द से रहने लगे और विद्या आराधन एवं ज्ञान सम्पादन करते हुये कालयापन करने लगे। वहाँ रहते हुये चारुदत्त ने विद्याधरों की बत्तीस कुमारिकाओं के साथ विवाह किया। वे कुमारियां अनन्त रूप गुण एवं सुलक्षण युक्त थीं। चारुदत्त अपने लिये निर्माण कराये गये पृथक् महलों में उनके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। और पूर्व पुण्य के उदय से विविध भोगोपभोग करने लगे।

उन विद्याधर कुमारियों के साथ नाना भांति की क्रीडा करते हुये

---

* विद्याधरों के उस नगर का नाम 'शिवमंदिर' था। यथा -

अंह च मुनिमानम्य विमानेम विहायसा।

खेचाराभ्यां सहायातः प्राविशं शिवमंदिरम्।।

** आराधना कथाकोश में 'शिवमंदिर' आदि में जाने का कोई कथन नहीं है। यहाँ सीधे चम्पापुरी ही पहुँचाने का वर्णन है।

*चारुदत्त अपने तमाम दुखों को भूल गये और इन्द्रों के समान आनन्दानुभव करने लगे * इस प्रकार चारुदत्त निरंतर आनन्दमग्न रहते थे और अनेक विद्याधर उनकी सेवा किया करते थे। चारुदत्त उन बत्तीस कुमारियों के साथ जिस प्रकार आनन्द क्रीड़ा करते थे उसी प्रकार समयानुसार जिनपूजा आदि श्रावक के नित्यकर्मों को भी बड़े ही चाव से किया करते थे।*

एक दिन रात्रि को सुख नींद में सोते हुये चारुदत्त एकदम चोंक उठे और उन्हें घर की चिन्ता ने आ दबाया। तब वह इस प्रकार विचार करने लगे कि मुझे अब अपने नगर में जाकर माता और स्त्री से मिलना चाहिये उनसे अलग हुये बहुत समय व्यतीत हो गया है। न जाने माताजी और पत्नी की गुजर कैसे चलती होगी। वे अपने दिन किस प्रकार पूरे कर रही होंगी। इसलिये अब बिना कुछ सोच विचार किये शीघ्र ही उनके पास जाना चाहिये।

इस प्रकार सोच विचार करते-करते सबेरा हो गया। तब चारुदत्त ने सिंहग्रीव से कहा कि कृपा करके अब मुझे अपने घर जाने की आज्ञा दीजिये। यह सुनकर विद्याधर सिंहग्रीव को बहुत दुःख हुआ, और वह बोला– कुमार! इतनी प्रीति बढ़ाकर अब आप यह क्या कह रहे हैं? आपको हमारे राज्य में रहने से यदि किसी प्रकार का कोई संकोच हो तो यह राज्यभार आप ही सम्हालिये और हम आपके सेवक होकर रहेंगे। कृपया अब आप अपने देश जाने की बात नहीं कहें। मुझे यह सुनकर भारी दुःख होता है।

विद्याधर सिंहग्रीव आदि की यह स्नेहपूर्ण बातें सुनकर चारुदत्त ने कहा– राजन्! मैं आपके इस प्रेम और कृपा के लिये आभारी हूँ। वास्तव में आपकी ही कृपा का यह फल है कि मैं इतना सुखी हो सकता हूँ। आपके राज्य में रहते हुये मुझे न तो कोई संकोच है और न चिन्ता ही है। किन्तु अब माता, पत्नी और कुटुम्ब जनों की भी खबर लेना आवश्यक है। वे न जाने किस प्रकार अपने दिन बिताते होंगे। इसलिये अब आप मुझे नहीं रोकिये और सहर्ष जाने की आज्ञा दीजिये। इस प्रकार चारुदत्त का हठ देखकर विद्याधर ने उन्हें जाने की सम्मति दे दी। और उनके जाने का सुयोग्य प्रबन्ध कर दिया।

** हरिवंश पुराण में विद्याधर कुमारियों के साथ विवाह करने का कोई कथन नहीं है।*

गंधर्वसेना के साथ प्रयाण

चारुहंसविमाननेन साकं गंधर्वसेनया।
आनीय मित्रेदेवौ मां भूत्या विस्मयनीयया।।

विद्याधर सिंहग्रीव ने चारुदत्त के जाने के पूर्व उनसे विनयपूर्वक कहा कि आपको हमारा एक कार्य करना होगा। रूप लावण्य और अनेक लक्षणों से युक्त गन्धर्वसेना नामकी मेरी एक सुन्दर कन्या है। * वह वीणावादन में बहुत ही प्रवीण है तथा कलामय संगीत में भी उसके सामने कोई नहीं टिक सकता। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो वीणावादन में जीत लेगा मैं उसी के साथ अपना विवाह करूंगी। गन्धर्वसेना की यह प्रतिज्ञा सर्वत्र फैल चुकी है और अनेक राजा महाराजा तथा विद्याधरों ने आकर अपना वीणाचातुर्य भी दिखाया है, किन्तु सब अपनासा मुँह लेकर पराजित हो वापिस चले गये। अभी तक गन्धर्वसेना को जीतने वाला कोई भी चतुर व्यक्ति नहीं मिला। अब हमें यहाँ पर कोई ऐसा व्यक्ति मालूम नहीं पड़ता कि जो अपने वीणावादन से गन्धर्वसेना को विवाह ले। इसीलिये हम सबको एक चिन्ता लगी रहती है।

एक दिन मैंने ** एक निमित्तज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि गन्धर्वसेना को वीणावादन में कौन जीतेगा और उसका भावी पति कौन होगा? तब मुनि महाराज ने मुझे उत्तर दिया कि "श्रेष्ठिकुमार चारुदत्त जब अपने घर पहुँचेगा तब उसके यहां एक यादवपति कुमार आयेगा, वही गन्धर्वसेना का स्वामी होगा।" ***

---

* हरिवंश पुराण में गन्धर्वसेना सिंहग्रीव की पुत्री नहीं किन्तु बहिन बताई गई है। वहाँ सिंहग्रीव और वराहग्रीव को 'कन्यायाः भ्रतरौ' लिखा है। वहाँ ठीक भी है।

** गन्धर्वसेना सिंहग्रवी पुत्री नहीं किन्तु बहिन थी। इसलिये उनके पिता अमितगति विद्याधर (राजा) ने मुनिराज से प्रश्न किया था, न कि सिंहग्रीव ने यथा –

चारुदत्त श्रुणु श्रीमानेकदावधिचक्षुषं।
राजेति पृष्टवान् भर्ता के मे दुहितरंक्ष्यते।।

*** मुनिराज के यह बचन सुनकर पिताजी ने गन्धर्वसेना के विवाह का निश्चय आपके ऊपर ही स्थिर रखा। किन्तु पिताजी तो दीक्षा लेकर मुनि हो गये हैं, इस समय अब वे है नहीं। इसीलिये उनके मन्तव्यानुसार आप ही मालिक हैं। जैसा जो आपको उचित प्रतीत हो सो करिये। यथाः–

इत्याकर्ण्य तदा तेन राजा प्रवृजतापि च।
स्थिरीकृतमिदं कार्यं प्रमाणं त्वं ततोऽसि नः।

इसलिये मित्र! आप तो परोपकारी वीर एवं सज्जनोत्तम पुरुष हैं। कृपया आप गन्धर्वसेना को अपने साथ ले जाइये और वीणावादन में जो योग्य पुरुष इसे जीत ले उसके साथ इसका विवाह सम्बन्ध करा दीजिये। गन्धर्वसेना अब विवाह योग्य भी हो चुकी है। वह विवेकपूर्वक अपने भावी पति को चुन सकेगी। इसलिये अब आप ही इसे अपने नगर में लिवा जाइये। इस प्रकार अनेक तरह से समझा कर और चारुदत्त की स्वीकृति प्राप्त कर के गन्धर्वसेना उन्हें सोंप दी तथा चलने की तैयारी की।

जिस समय चारुदत्त गन्धर्वसेना को लेकर अपने नगर की ओर प्रयाण करने लगे उस समय विद्याधरों ने चारुदत्त को विवाही गई अपनी-अपनी कन्याओं की भी उनके साथ विदा कर दी। चलते समय किसी ने चारुदत्त को भेंट में हाथी, घोड़ा दिये तो किसी ने रथ पयादे दिये। किसी ने नौकर चाकर दिये तो किसी ने कर कंकण और मुक्ताहार अर्पण किये। किसी ने छत्र चमर और हाथी आदि भेंट किये तो किसी ने अतुल भण्डार सोंप दिया। किसी ने नाना प्रकार के वस्त्राभरण दिये तो किसी ने रत्नजड़ित सिंहासन, मुकुट और छत्रादि अर्पण किये। किसी ने हीरा, माणिक, मोती, पन्ना और अनेक प्रकार के जवाहिरात दिये तो किसी ने दलबल सहित महान् सैन्य देकर अपनी भक्ति का प्रदर्शन किया।

इस प्रकार एक से एक बढ़कर भेटें दी जाने के बाद बड़े ही ठाट-बाट और गाजेबाजे के साथ चारुदत्त की विदा की गई। जाते समय सिंहग्रीव और वराहग्रीव ने गन्धर्वसेना को तिलक किया और बड़ी धूमधाम के साथ विदा कर दी। विदा करते समय गन्धर्वसेना की माता का हृदय भर आया, इसलिये उसने अपनी पुत्री को गले लगा लिया और आंखों से गरम-गरम आंसू बहाती हुई बोली- बेटी! तू परदेश जा रही है। तेरे बिछोह के कारण मुझे भारी दुःख हो रहा है। अब मैं तेरे बिना यहां अकेली कैसे रहूँगी? तेरे बिना मुझे इस घर में कैसे चैन पड़ेगी? कौन जाने अब तू मुझे कब मिलेगी? इस प्रकार दुःख और विलाप करती हुई माता ने गन्धर्वसेना को अपनी छाती से लगाकर बहुत ही मोह प्रगट किया और आकुल व्याकुल सी होकर खूब रोने लगी। इसी प्रकार अन्य विद्याधर पुत्रियों को उनकी माताओं ने अनेक प्रकार की सीख देकर विदा किया।

*इस प्रकार जब चारुदत्त ने अपने नगर की ओर प्रयाण किया तब नगरजनों के मन में भारी दुःख हुआ। उस समय अनेक स्नेही मित्र और नगर के प्रतिष्ठित जन चारुदत्त को गले लगाकर भेंट करने लगे। चारुदत्त गन्धर्वसेना और अपनी विद्याधरी पत्नियों को साथ लेकर सुसज्जित विमान में बैठ गये * साथ ही सिंहग्रीव आदि विद्याधर भी सैन्य सहित अपने-अपने वायुयानों में बैठकर चल दिये। आकाश मार्ग से विमान चम्पापुरी की ओर उड़ते जा रहे थे और साथ ही विविध प्रकार के बाजे बजते जाते थे। उस समय नगरजनों को ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वर्गों में देवगण ही आनन्द क्रीड़ा कर रहे हों।*

*आकाश मार्ग में वे सब आनन्द विनोद करते हुये चम्पापुरी नगरी में जा पहुँचे। वे सब नगर के पास ही गाजेबाजे के साथ उतरे और आनन्दोत्सव मनाने लगे। जब चम्पापुरी के राजा विमलवाहन को यह खबर हुई तब वह अपने इष्टमित्र और नगरजनों के साथ चारुदत्त से मिलने के लिये वहां आया। चारुदत्त ने राजा को आया हुआ देखकर उसकी यथायोग्य विनय की ओर अनेक बहुमूल्य वस्तुयें भेंट कीं। इस प्रकार चारुदत्त का सज्जनोचित व्यवहार देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। और चारुदत्त को पुनः पूर्व स्थिति में देखकर खूब ही हर्षित हुआ। इसी हर्ष में राजा विमलवाहन ने चारुदत्त को अपना आधा राज्य सौंपकर अपने हाथ से तिलक किया। और नगर में बड़ी ही धूमधाम के साथ आनन्दोत्सव मनाया। ** इस आनन्दोत्सव में नगर और बाजार की शोभा की गई तथा विविध प्रकार के*

** जाते समय चारुदत्त ने अपने मित्र उन दो देवों को स्मरण किया था। स्मरण करते ही वे दोनों देव निधियाँ लेकर वहाँ आ गये। और अपने सुन्दर 'हंस विमान' में बिठाकर गन्धर्वसेना सहित चारुदत्त आदि को चम्पापुरी ले गये थे यथा –*

मित्रकार्यसमृद्युक्तौ मित्रदेवौ मया स्मृतौ।
स्मरणादेव सम्प्राप्तौ निधिहस्तौ ममांतिकं।।
चारुहंसविमानेन साकं गन्धर्वसेनाया।
आनीय मित्रदेवौ मां भूत्वा विस्मयनीयया।।

*** हरिवंशपुराण में ऐसा कोई कथन नहीं है। चारुदत्त आधा राज्य दिये जाने आदि की बात मात्र इसी कथा में है। हरिवंशपुराण में तो मात्र इतना ही कथन है कि देवों ने चारुदत्त चम्पापुरी पहुँचकर पूर्ण व्यवस्था की और उन्हें अक्षय निधियां देकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अपने स्थान को चले गये।*

सुव्यवस्थ्सप्य चम्पायामक्षयैर्निधिभिः सह।
नत्वा देवौ गतौ स्वर्ग खेचरा च निजास्पदं।।

बाजों से सारा नगर गूंज उठा। कहीं भेरी, तूरही पटह और सहनाई बज रही थी तो कहीं अनेक प्रकार के वादित्र एक ही साथ (बैंड) बजाये जाते थे कहीं निशान घूम रहे थे तो कहीं नृत्यादि हो रहे थे। इस प्रकार सभी नगरजनों ने खूब ही आनन्द मनाया और याचकों को दान दिया।

इस प्रकार आनन्दोत्सव सहित चारुदत्त ने अपने चतुरंग दल के साथ नगर में प्रवेश किया। उस समय नगर में जो उत्साह था वह वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय नगरजन इस प्रकार चर्चा कर रहे थे कि वास्तव में यह सब पुण्य का ही प्रभाव है कि चारुदत्त अपनी पूर्व स्थिति में फिर से आ गया। जो भानुदत्त का पुत्र (चारुदत्त) भिखारी से भी बुरी स्थिति में नगर छोड़कर चला गया था वही महान् विभूति को लेकर पुनः इसी नगर में राजसम्मानित होकर आया है। पुण्य के माहात्म्य को कौन वर्णन कर सकता है? पुण्य के प्रभाव से ही शुभ गति मिलती है और पुण्य के द्वारा ही वैभव सम्पत्ति प्राप्त होती है। पुण्य ही त्रिभुवन में सारभूत है। पुण्य के प्रताप से शत्रु भी मस्तक पर धरे-धरे फिरता है। और पुण्य के प्रभाव से ही शत्रु दल का नाश होता है। पुण्य के माहात्म्य से ही यश और आनन्द की वृद्धि होती है तथा पुण्य के प्रसाद से ही धनबल, विद्याबल तथा रूप की प्राप्ति होती है। पुण्य के माहात्म्य से कर्मों का नाश होता है और पुण्य के द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश होता है। पुण्य की महिमा अपरम्पार है। पुण्यवान के लिये कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं है। यहां तक कि मोक्ष प्राप्ति में भी पुण्य का आधार है। इसलिये सुख चाहने वाले सभी मनुष्यों को पुण्य संचय का प्रयत्न करना चाहिये। ***

पुण्यवान चारुदत्त ने आनन्दपूर्वक नगर में प्रवेश किया और सबसे पहिले वे अपने साथियों के साथ जिनमन्दिर में गये तथा दर्शन पूजन से विशेष पुण्य संपादन किया। बाद में धरोहर रखा हुआ अपना मकान द्रव्य

इस प्रकार नगर में आकर चारुदत्त सीधे अपने मामा, मां, स्त्री और कुटुम्बी आदि से मिले और आनन्दपूर्वक रहने लगे। यथाः-

मातुलं मातरं पत्नीं बन्धुवर्गं च सादरं।
दृष्ट्वा तुष्टमतिं प्राप्तं प्रप्तोऽहं सुखितां परं।।

- हरिवंशपुराण

समझ नहीं आता कि कथाकार ने राजा द्वारा आधा राज्य दिये जाने की बात किस आधार पर लिखी है।

*** *श्री अमितगति आचार्यने पुण्यकर्मके विषय में लिखा है -*

देकर छुड़ा लिया और उसमें अपनी माता तथा स्त्री को बुलवा लिया। उनके आते ही चारुदत्त ने सबसे पहले माता के चरणों में नमस्कार किया और आर्शीवाद प्राप्त करके उसी के पास बैठ गया। बहुत कुछ वर्षों से बिछुड़े हुये माता और पुत्र का मिलाप उस समय करुणा और आनन्द की मानो गंगा, जमुना की धारा ही प्रगट कर रहा था। पुत्र को देखकर माता का हृदय फूला न समाया और उसकी आंखों से आनन्दाश्रु बहने लगे। उधर चारुदत्त के भी हर्ष का पार नहीं था।

माता से मिलने के बाद चारुदत्त अपनी पत्नी से मिले। और कुशल समाचार के बाद अनेक प्रकार से आनन्द विनोद की बातें करने लगे। बाद में चारुदत्त ने अपनी माता को सिंहासन पर विराजमान किया और उसके बाद अपनी पत्नी को बैठाया और फिर आनन्द एवं उत्साहपूर्वक अपनी पत्नी सुमित्रा को विधि सहित पट्ट बांधकर पटरानी का पद दिया। तथा उसके उपलक्ष्य में बड़ा भारी उत्सव मनाया।

वसन्ततिलका से विवाह

* अहो चेटितमार्यस्य महौदार्यसमन्वितं।
अहो पुण्यवलं गण्यमनन्यपुरुषोचितं।।

उधर वेश्या पुत्री वसन्ततिलका चारुदत्त के वियोग होने के बाद यह

द्वीपे जलनिधिमध्ये गहनवने वैरिणां सयूहेऽपि।
रक्षति मर्त्यै सुकृतं पूर्वकृतं मृत्यवत् सततम्।।
विपदोऽप पुण्यमाजां जायंते सम्पदोऽत्र जन्मवतम्।
पापविपाकाद्विपदो जायंते सम्यदेऽपि सदा।।
द्वीपे चात्र समुद्रे धरणीधम्मस्तके दिशामन्ते।
पातं कूपेऽपि विघी रत्नं योजयति जन्मवताम्।।
पुरुषस्य भाग्यसमयं पतितो वज्रोऽपि जायते कुसुमम्।
कुसुमपि भाग्यविरहे वज्रदपि निष्ठुरं भवति।।
बांधवमध्येडपि जनो दुःखानि समोति पापपाकेन।
पुण्येन वैरिसदनं यातेऽपि न मुच्यते सौश्चम्।।
दिशि विदिशि वियति शिचरिणि संयति गहने वनेऽपि यातानाम्।
याजयति विधिमभीष्टं जन्मवताभमिमुखीभूतः।।

* अर्थ– उत्तम पुरुषों की उदारतापूर्ण चेष्टाओं को धन्य है। तथा अन्य पुरुषों के लिये दुर्लभ किन्तु ऐसे महापुरुषों को प्राप्त पुण्य के लिये भी धन्य हैं।

प्रतिज्ञा किये बैठी थी कि इस भव में तो मेरे पति चारुदत्त ही हैं, और उनके सिवाय सभी पुरुष पिता और भाई के समान हैं। वेश्या वसन्ततिलका की यह दृढ़ प्रतिज्ञा नगर भर में फैल गई। वेश्या तब राजा और प्रतिष्ठित प्रजाजनों ने चारुदत्त को समझाया कि आप वसन्ततिलका को स्वीकार करिये। कारण कि उसने आपके सिवाय किसी भी अन्य पुरुष की इच्छा तक नहीं की है और अणुव्रत धारण करके आपकी माता की सेवा करती हुई उन्हीं के पास रहती है। * चारुदत्त ने भी विवेक से काम लिया। और वेश्या वसन्ततिलका को सहर्ष स्वीकार किया। ** तथा उसे अपनी द्वितीय पटरानी पद पर स्थापित किया।

इसके अतिरिक्त अन्य विद्याधर कन्याओं को भी यथायोग्य पद दिया और आनन्दपूर्वक अपना गृहीजीवन बिताने लगे। इस प्रकार चारुदत्त अपने पूर्व दुःखों को भूलकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे। उनके साथ जो विद्याध ार आये थे उनका भी चारुदत्त ने यथाचित्त आदर-सत्कार किया और सबको प्रीतिभोज दिया। सिंहग्रीव विद्याधर के साथ चारुदत्त का दिन दूना और रात चौगुना प्रेम बढ़ता गया और वे सब एक ही साथ रहने लगे। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत होने पर दोनों विद्याधरों ने एक दिन चारुदत्त से निवेदन किया कि हमें आपके यहां रहते हुये बहुत दिन हो गये हैं। अब कृपया हमें अपने नगर को जाने की आज्ञा दीजिये।

---

* हरिवंश पुराण आदि में राजादि द्वारा समझाने की कोई बात नहीं है। किन्तु चारुदत्त ने स्वयं ही वसन्ततिलका को उदारपूर्वक स्वीकार किया था। स्मरण रहे कि अन्य ग्रन्थों में वसन्ततिलका को 'वसन्तसेना' के नाम से लिखा है।

** तां शुश्रूधारी श्रू मदणुव्रतसंगतां।
श्रुत्वा वसन्तसेनां च प्रीतः स्वीकृतवानहं।।

वेश्या वसन्तसेना अपनी मां का घर त्यागकर मेरे (चारुदत्त के) घर आ गई थी और उसने आर्यिका के पास जाकर श्राविका के व्रत (अणुव्रत) धारण कर मेरी मां और स्त्री की सेवा की थी। इसलिये मैं (चारुदत्त) उससे भी मिला और उसे सहर्ष अपनाया (हरिवंशपुराण भाषाटीका पं० गजाधर लाल जी शास्त्री कृत।)

इसी बात को स्व० पंडितप्रवर दौलतरामजी ने अपनी भाषाटीका वचनिका में इस प्रकार लिखा है :-

"अरे यह कलिंगसेना वेश्या की पुत्री वसंतसेना पतिव्रता मेरे परदेश गये पीछे अपनी माता का गृह छोड़ि आर्यिका के निकट श्राविका के व्रत धारण कर मेरी माता के निकट आय रही। मेरी माता की अर स्त्री की ताने अति सेवा करी, सो दोऊ ही वासुँ अति प्रसन्न भई अर जगत में ताका यश बहुत भया, सो मैं भी अति प्रसन्न होय ताहि अँगीकार करता भया।"

चारुदत्त ने विद्याधरों के जाने की इच्छा जानकर कहा– मित्रो! आप जाने की बात मत करिये। आपकी इस इच्छा को जानकर मुझे बहुत दुःख होता है। किन्तु जब देखा कि विद्याधरों का विशेष आग्रह है तब उन्हें सम्मानपूर्वक विदा कर दिया। * विद्याधरों ने जाते समय चारुदत्त का प्रेमपूर्वक आभार माना और कहा कि आप गंधर्वसेना के विवाह की सुयोग्य व्यवस्था करियेगा।

इस प्रकार विद्याधरों के चले जाने के बाद चारुदत्त ने गंधर्वसेना के स्वयंवर की तैयारी की और देश देशान्तरों में अपने दूत भेज कर सब जगह घोषणा करवा दी कि जो पुरुष राजकन्या गंधर्वसेना को वीणावादन में जीतेगा उसके साथ उसका विवाह किया जायेगा। यह सुनकर एक से एक बढ़कर राजा महाराजा वहां आकर एकत्रित हुए। उन्हीं में यादववंशी कुमार वसुदेव भी आये थे। सब आकर स्वयंवर शाला में यथास्थान बैठ गये।

उधर गंधर्वसेना को राजाओं के आने का समाचार सुनाकर सखियां स्वयंवर–मण्डप में चलने की प्रेरणा करने लगीं। तब गन्धर्वसेना ने निराशापूर्ण वाणी में कहा– सखियों! यह सारा आडम्बर व्यर्थ ही किया जा रहा है। कारण कि इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई भी पुरुष प्रतीत नहीं होता जो मुझे वीणावादन में जीत सके। फिर भी सखियों का अति आग्रह देखकर गन्धर्वसेना उठी और हाथ में वीणा लेकर स्वयंवर–मण्डप की ओर चल दी।

जब वह गन्धर्वसेना राजमार्ग से स्वयंवर मण्डप की ओर जा रही थी तब उसे देखने के लिये भारी भीड़ लगी थी। नगर के स्त्री पुरुष उसके रूपलावण्य को देखकर दांतों तले उँगली दबाने लगे। कोई कहता था कि यह तो सुरकन्या है, कोई कहता था कि नहीं, यह तो नागकुमारी सी प्रतीत होती है। कोई कहता था कि यह विद्याधरी है और कोई कहता था कि यह स्वर्गलोक से अप्सरा ही भूतल पर उतर आई है।

वास्तव में गन्धर्वसेना इतनी सुन्दर थी कि नगरजनों को अनेक प्रकार से भ्रम उत्पन्न कर सकती थी। उसका मुख पूर्णमासी के चन्द्रमा समान था, शरीरकान्ति स्वर्ण के समान थी, बड़ी–बड़ी मनोहर एवं लालिमापूर्ण आंखे मछली जैसी सुन्दर एवं मृग की आंखों को भी मात करने

---

* हरिवंश पुराण में विद्याधरों और देवों को उसी समय वापिस गया हुआ लिखा है जब वे चारुदत्त को नगर में पहुँचा चुके थे।

वाली थीं, आंखों की भृकुटी तो मानों कामदेव का टेढ़ा धनुष ही थीं, उसके मस्तक पर सुकोमल एवं श्याम केश बहुत ही शोभित होते थे। ऊँची उठी हुई लम्बी नाक तो ऐसी सुन्दर लगती थी जैसे किसी चतुर कारीगर ने सोने की ही बनाकर लगा दी हो। उसकी दन्तपंक्ति खिले हुए अनार दाने जैसी सुशोभित होती थी।

कानों में कुण्डल ऐसे लगते थे जैसे विधाता ने स्वयं अपने हाथों से ही बनाये हों। उनके गले में जगमगाती हुई मोतियों की माला और भी अधिक शोभित हो रही थी। उसके स्तनद्वय स्वर्णकलश के समान, पतली कमर केहरी के समान, बाहु युगल कमल की लता समान और जंघा कदलीस्तम्भ के समान मालूम होती थी। उसका शरीर इतना सुगंधित था कि पवन का झौंका आते ही चारों ओर वातावरण सुगंधित हो जाता था। इतने पर भी उसने अपने शरीर पर दिव्याभूषण और सुन्दर वस्त्र पहिने थे इसलिये उसकी शोभा और भी दूनी हो गई थी।

इस प्रकार सुसज्जित सुन्दर गन्धर्वसेना अपने हाथ में वीणा लेकर स्वयंवर-मण्डप में पहुँची। उसकी सुन्दरता देखकर उपस्थित राजागण आश्चर्यचकित हो मुग्ध हो गये। उसकी प्रभावक मूर्ति को देखकर कई प्रतिस्पर्धी तो वीणा हाथ में लेकर यों ही रह गये और कितने ही हिम्मत हारकर नीचे मुख किये बैठे रहे। किसी ने यदि वीणावादन का साहस किया भी तो वे अपनी कुछ भी चलती न देखकर भाग्य पर क्रुद्ध होने लगे। कुछ लोग तो मात्र गंधर्वसेना की प्रशंसा ही करके रह गये और इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया।

थोड़ी देर के बाद वसुदेवकुमार ने गंधर्वसेना को सम्बोधित करते हुये कहा- सुन्दरी! तुम जिस वीणावादन में चतुराई बतला रही हो, तनिक उसके विषय में कुछ विवेचन तो करो। बताओ तो सही कि वीणा कितनी पंक्ति की होती है? उसके बजाने का उत्तम समय कौन सा है? इत्यादि।

यह सुनकर गंधर्वसेना का मद उतर गया और वह बोली- चतुर कुमार! मुझे वीणा के गुणों का ज्ञान नहीं है। कृपया आप ही बताइये कि आपने कितने प्रकार का वीणा राग गुरु के पास सीखा है। तब कुमार ने

*कहा– राजकुमारी! वीणा के ग्यारह गुण हैं देखो मैं उन सब रागों को तुम्हारे सामने सुनाता हूं। यों कहकर वसुदेव कुमार ने बड़ी ही कुशलतापूर्वक वीणा बजाई और गंधर्वसेना को मुग्ध कर लिया। **

इस चातुर्यप्रदर्शन के कारण गंधर्वसेना लज्जित हो गई और नतमुख होकर खड़ी हो गई। वसुदेवकुमार की वीणा से मात्र गंधर्वसेना ही मुग्ध नहीं हुई थी किन्तु पशुपक्षी तक मोहित हो गये थें यहां तक कि काल समान भुजंग सर्प भी मन्त्र मुग्ध से हो गये। वहाँ बैठे हुये प्रतिस्पर्धी राजागण भी अन्तःकरण से वसुदेव की प्रशंसा करने लगे और एक–एक करके सब विदा हो गये।

उधर चारुदत्त ने विजयोत्सव मनाने की तैयारी कराई और नगर भर में आनंद फैल गया। कहीं विविध प्रकार के बाजे बजने लगे तो कहीं गायन संगीत और नृत्यादि होने लगे। चारुदत्त ने अपने महल के आगे एक विशाल विवाहमंडप बनवाया। उसमें मोतियों की वंदनवारें लगवाई और मोती माणिक आदि से चौक पुरवाये। नगर की युवतियां जाकर वहाँ पर मधुर–मधुर गीत गाती थीं और गृहस्थाचार्य विवाह की तैयारी कर रहे थे।

दूल्हा वसुदेवकुमार ने भी अनेक प्रकार से श्रृंगार करके विवाह की तैयारी की। और रत्नजड़ित आभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित होकर विवाह–मंडप में आये। एक ओर वसुदेव कुमार कामदेव के समान शोभित हो रहे थे तो दूसरी ओर गन्धर्वसेना सुरकन्या जैसी मालूम होती थी। बहुत कुछ आनन्दोत्सव और मंगल गीतों के बाद दोनों का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया गया। विवाह के समय चारुदत्त ने वसुदेवकुमार को कर कंकण, मुक्ताहार, छत्र, चमर, हाथी, घोड़ा और अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुयें भेंट में दीं और बड़े उत्साह के साथ उनकी विदा कर दी।

** हरिवंशपुराण में लिखा है कि गन्धर्वसेना द्वारा दी गई अनेक वीणाओं को सदोष बताकर वसुदेवकुमार ने उसे लज्जित कर दिया था। बाद में गंधर्वसेना ने वीणा राग के विषय में प्रश्न किया तब वसुदेवकुमार ने बड़ी ही विद्वत्ता से उत्तर दिया। हरिवंशपुराण में यह वर्ण 119 श्लोकों में खूब विस्तार से है। उसे देखने से कुमार का अद्वितीय वीणा चातुर्य मालूम होता है।*

चारुदत्त का वैराग्य

जिनेन्द्रचन्द्रोदितमस्तदूषणं, कषायमुक्त विदधाति यस्तपः।
न दुर्लभं तस्य समस्तविष्ठपे, प्रजायते वस्तु मनोज्ञमीप्सितम्।।

इस प्रकार गन्धर्वसेना के विवाह से निवृत्त और निश्चित होकर चारुदत्त आनन्दपूर्वक राज्य करते हुए न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगे और अपनी चौतीस स्त्रियों के साथ * आनन्दोपभोग करते हुये कालयापन करने लगे, साथ ही वह जिनेन्द्रपूजादि धर्मकार्य भी नियमित रूप से करते थे। महाराजा चारुदत्त ने अपनी न्याय-निपुणता एवं प्रजा- वात्सल्य के कारण सारे जग में यश प्राप्त कर लिया। वास्तव में यह सब पुण्य की ही महिमा है कि जो पुरुष एक दिन कंगाल स्थिति में इधर-उधर मारा-मारा फिरता था वही समय आने पर राज पद पर विराजित हो आनन्द भोग करने लगा। चारुदत्त ने अपनी न्याय निपुणता के साथ बहुत समय तक राज्य संचालन किया।

एक समय की बात है कि महाराजा चारुदत्त प्रसन्नचित्त होकर राज्य सिंहासन पर बैठे थे। दरबार भरा हुआ था। अमात्य भृत्यगण यथास्थान बैठे हुये थे। चारुदत्त के मस्तक पर मणिमय मुकुट शोभा दे रहा था। उसका तेज सूर्य के समान था। तथा अनेक प्रकार के आभूषणों के कारण वह इन्द्र के समान मालूम होते थे और उनके मस्तक पर मनोहर चमर ढुर रहे थे। इतने में कोई निमित्त पाकर उन्हें अकस्मात् वैराग्य उत्पन्न हो गया। और वे विचारने लगे कि इस संसाररूपी भयानक कूप में पड़े हुये मुझे बहुत समय व्यतीत हो गया। भोगविलास में यह मानव जीवन पूर्ण हुआ जाता है। मैं आज मनुष्यों के ऊपर कल्पित राज कर रहा हूँ और इन लोगों ने मुझे राजा मान रखा है किन्तु वास्तव में यह राज्य किस काम का? सच्चा राज्य तो वह है कि जब मोक्ष प्राप्ति करके सर्वोच्च पद प्राप्त किया जाय। जो कायर पुरुष अपने मन पर ही राज्य नहीं कर सकता वह दूसरों पर क्या राज्य करेगा?

इस प्रकार विचार कर चारुदत्त ने निश्चय किया कि अब इस जंजाल

---

* हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोश में 34 स्त्रियों का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु सुमित्रा और वसन्तसेना का ही नाम आया है।

को छोड़कर किसी वीतराग मुनि के पास मुनि दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करना चाहिये। बस, फिर क्या था। चारुदत्त ने उसी समय अपने कुटम्बीजनों को बुलाया और उन्हें राज्य भार सौंपकर * वन की ओर चल दिये और वहाँ जाकर किसी मुनिराज के समीप जिन दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारण करते ही उनने सब क्रोधादि कषाय का त्याग कर दिया जिससे उन्हें समता रस की प्राप्ति हुई और सांसारिक सुख की अपेक्षा कई गुना आनन्द देने वाले अलौकिक सुख का अनुभव होने लगा।

चारुदत्त बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ एवं दृढ़ व्यवसायी थे। इसलिये उनने 28 मूलगुणों का बड़ी ही तत्परता से पालन किया। वे महीने–महीने के उपवास करने लगे और कठोर कायक्लेश सहने लगे। वे रत्नत्रय की आराधना करते हुये योग निरोध करते थे और दश धर्मों को धारण कर समाधि की भावना भाते रहते थे। वे सर्वदा यही विचार करते थे कि इस जीव का कल्याण एक मात्र धर्म से ही हो सकता है। पंचपरमेष्ठी की शरण के सिवाय इसका कोई सच्चा सहाई नहीं है निज आत्मा का ध्यान करने से ही कर्मों की निर्जरा होती है।

सर्वार्थ सिद्धि गमन

सन्यासविधिना कालं, कृत्वाऽसौ शल्यवर्जितः।
स्वर्गलोकं समासाद्य, देवो जातो महर्द्धिकः।।

इस प्रकार विचार करते हुये चारुदत्त ने बहुत तप किया और आयु के अन्त समय समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वास्तव में यह अहमिन्द्र पद महापुण्य के प्रताप से प्राप्त होता है। वहाँ पर दिव्य तेजस्वी शरीर होता है और अन्तर्मुहूर्त में ही पूर्ण यौवन प्राप्त हो जाता है। वहाँ पर अनेक प्रकार के रत्नजड़ित वस्त्राभूषण पहिनने को मिलते हैं। और सब अहमिन्द्र निरन्तर धर्म चर्चा में अपना समय व्यतीत किया करते हैं। चारुदत्त ने इस प्रकार के अपूर्व स्थान को अपने पुण्योदय से प्राप्त कर लिया।

---

* आराधना कथाकोश में लिखा है कि चारुदत्त ने विरक्त होकर अपने 'सुन्दर' नाम के पुत्र को श्रेष्ठि पद सौंपकर दीक्षा ली थी। यथा –

ततो वैराग्यमासाद्य, सुन्दराख्यसुताय च।
दत्वा श्रेष्ठिपद पूतं, दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितं।।

इससे मालूम होता है कि चारुदत्त के कोई सुन्दर नाम का पुत्र भी था और वे राजा नहीं किन्तु सेठ ही थे।

चारुदत्त के साथ वसंततिलका तथा अन्य अनेक स्त्री पुरुषों ने भी दीक्षा धारण कर ली थी। वे सब अपने-अपने पुण्य और तपोबल के अनुसार शुभगति को प्राप्त हुये हैं। चारुदत्त का जीव आज भी सर्वार्थसिद्धि में सुख के साथ रहता है। अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोगों को भोगता है। सुमेरु और कैलाश पर्वत आदि स्थानों के जिन मंदिरों की यात्रा करता है। विदेह क्षेत्र में साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवान की स्तुति पूजा करता है और उनका सुख देने वाला पवित्र उपदेश सुनता है।

तात्पर्य यह है कि उस जीव का सारा समय सर्वदा धर्म साधन में ही व्यतीत होता है। इसी जिन भगवान के उपदेश किये हुये निर्मल धर्म की इस नागेन्द्र विद्याधर चक्रवर्ती आदि सभी भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं। यही धर्म स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला है। इसलिये यदि तुम्हें श्रेष्ठ सुख की चाह है तो तुम भी इसी धर्म का आश्रय ग्रहण करो *

सब कथाओं और ग्रन्थों का यही सार है कि धर्म सुख शांति का देने वाला है और पाप जगत के दुःखों में फँसाने वाला है। पाप और व्यसनों में फँसकर चारुदत्त जैसा ज्ञानी विवेकी श्रेष्ठ कुल वाला जीव मारा-मारा फिरता है, दर-दर का भिखारी बनाता है, जनता की दृष्टि में गिर जाता है, और आत्मपतन करके अपने स्वर्गीय जीवन को नारकीय बना लेता है वही जीव धर्म धारण करके पाप पुंज का नाश करता है, ज्ञान का प्रकाश करता है, लोकपूजित हो जाता है, और स्वपर हित करता हुआ सर्वाथसिद्धि का सुख प्राप्त कर लेता है।

धर्म की महिमा अपरम्पार है। यदि कोई निर्धन हो, कुए या समुद्र में गिर पड़ा हो, महान् दुर्लंघ्य पर्वत वन या द्वीप में जा फँसा हो तो उसके पाप

---

* तत्र भोगान् सुभु जानः, स्वर्गलोकसमुद्भवन्।
कुर्वेन् यात्रां जिनेन्द्राणां, महास्वर्णाचलादिषु।।
साक्षात्तीर्थेकरानुच्चैः, केवलज्ञानलोचनान्।
चारुदत्तचरो देवः, सभभ्यर्चत्सुम क्ततः।।
श्रृण्सन् जैनेश्वरीं वाणीमाप्तेभ्यंः शर्मदायिनीम्।
इत्यादिधर्मसंसक्त स देवः सुखतः स्थितः।।
श्रीमत्सारसुरेन्द्रचन्द्रनिकरैर्नागेन्द्रसत्खेचरैः।
षट्खण्डाधिपभूचरैश्च नितरां, भक्त्या सदभ्यर्चितम्।।
धर्म श्रीजिनभाषितं शुचितरं स्वर्गापवर्गप्रदम्।
नित्यं सारसुखाय शर्मनिलयं सन्तः श्रयन्त्वंजसा।।

के नाश होने पर बात ही बात में धर्म के प्रभाव से सब विघ्न दूर हो जाते हैं। और उसे लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है। इसलिये जो मनुष्य लक्ष्मी और सुख के अभिलाषी हैं उन्हें जिनेन्द्र कथित चिन्तामणि रत्न के समान श्रेष्ठ धर्म की आराधना करना चाहिये।

क्षीणार्थोऽपि पयोधिमप्यधिगतः कूपवतीर्णोऽप्यतो।
दुर्लंघ्येऽपि च संचग्न् गिरितटै द्वीपांतरे वा पुमान्।।
लक्ष्मी धर्मसुखः प्रयाति निखिलां पापव्यपायाद्यत-
स्तद्धर्मे जिनबोधितं बुधजनाश्चिन्वंतु चिन्तामणि।।

इति श्री चारुदत्त चरित्र समाप्तोडयं

卐 चारुदत्त चरित्रा पद्यभाषा मय 卐

।। मंगलाचरण।। सोरठा।।

देवनकरि पूजन्त, प्रभू के चरन सरोज।
कविनेमि कथा भनन्त, चारुदत्त वर सेठ की।।1।।

पद्धड़ी

चम्पापुर नगरी अति रसाल, तहँ सूरसेन नृप है विशाल।
ताके इक सेठ जु भानु नाम, तथा गेह सुभद्र नाम भाम।।2।।

सो पुत्र हेत पूजे कुदेव, बहु, भांति करे ताकी जु सेव।
तौभी सुत नहि भयो सेठ भौन, कुश्रित सुरते लहि सिद्धि कौन।।3।।

इक दिन सुख थान जिनेश धाम, वंदन को पहुँची सेठ बान।
तहँ जुग चारन मुनि अति दयाल, वंदे सेठनी नाय भाल।।4।।

फिर वच भाषे हम दुःख लीन हो स्वामी तुम जग में प्रवीन।
मोको तप श्री होवे कि नाह, प्रभु भाषो जो संशय पलाय।।5।।

इसके वच सुनके ज्ञान चक्ष, याके मन की जानी प्रत्यक्ष।
तब कह्यो सुता सुनले अवार, मिथ्या मत की तू सेव टार।।6।।

तेरे सुत होवेगो महान, विदुसन सुख दाता ज्ञानवान।
इह निश्चयकर निज चित्त माहिं, यामें संशय रंचक जु नाहिं।।7।।

दोहा

श्री मुनिवर कै वचन सुन, नमन किया सिर नाय।
यह सेठानी हर्षयुत, तब ही निज गृह आय।।8।।
ता पीछे भगवन कथित, धर्म गहो धर राग।
केतेयक दिन के विषय, पुत्र भयो बड़भाग।।9।।
गुण उज्जवल धीमान अति, चारुदत्त तिन नाम।
उत्सव कीनो सेठजी ?, नगर विषय अभिराम।।10।।

चौपाई

गुण युत वृद्ध भयो इह बाल, जग मांही है पुन्य रसाल।
या करके क्या क्या नहिं होय, दिन दिन मंगल ता घर जोय।।11।।
सर्वारथ नामा इस भाम, मित्रवती पुत्री तिस धाम।
याकू चारुदत्त बुधवान, व्याहत भयो तात हट जान।।12।।
तोपण भी यह आतम शुद्ध, तिय सेवन में धारे बुद्ध।
तब इस मात सुभद्रा जेह, पुत्र मोह वश कीनो येह।।13।।
जे जन वेश्या में थे लीन, तिनके संग पुत्र को कीन।
तब ये खोटे संग पसाय, भ्रष्ट भयो सब सुध विसराय।।14।।
जे धीमान करे नहिं भूल, खोटी संग पाप को मूल।
चारुदत्त गणका के धाम, द्वादश वर्ष विताये ताम।।15।।
षोड़श सहस्र दीनार मंगाय, दे वसन्त सेना को खुवाय।
इक दिन तिय के भूषण लाय, गणका के ढिग मन हरषाय।।16।।

दोहा

गणका की माता तबै, लख आभूषण येह।
पुत्री से कहती भई, अब मम वच सुन लेह।।
चारुदत्त धन रहित अब, इससे तज तू प्रीत।
लक्ष्मी जुतते नेह कर, जो हम कुलकी रीत।।18।।

चौपाई

ऐसे सुन गणका तिह वार, यांसों छोड़ दियो तब प्यार।
लोक विषय यह है परतक्ष, गणिका निर्धन को नहिं इक्ष।।19।।

नगर नायिका को तज धाम, आयो निज गृह जहाँ थी भाम।
ताके आभूषण कछु लेह, मातुल पास गयो कर नेह।।20।।
ता जुत चलो बनज के हेत, देश उलावल मांहि सचेत।
जहाँ मूसरावर्त सुनाम, नगर वसत है अति अभिराम।।21।।
तहाँ कपास खरीदी जाय, चलत भये बोरे भरवाय।
ताम्रलिप्त नगरी को जात, पथ में अगन लगी दुख दात।।22।।
ताकर भस्म भई जु कपास, जब यह चित में भयो उदास।
पुन्य बिना उद्यम नहिं सिद्ध, क्यों कर पावे प्राणी रिद्ध।।23।।
चारुदत्त धर चित् उद्वेग, मातुल पूछन गयो यह वेग।
जहाँ समुद्रदत्त इक सेठ, बैठो प्रोहन ताके हेठ।।24।।
ता संग पवन द्वीप में जाय, कष्टथकी बहु द्रव्य उपाय।
आवे थे निज गेह मँझार, पाप उदय तिस भयो अपार।।25।।
वारिध में प्रोहन फट गई, भई सोई विध ना निर्मई।
ऐसे सप्त वार फट पोत, पुन्य विना किम प्रापत होत।।26।।
आप बचो कछु पुन्य वसाय, हुती जु इसकी पूरन आय।
सुरु वच सम इक लकड़ी खण्ड, पाकर वारिध तिरो अखण्ड।।27।।
राजग्रही के पथ को चलो, तहँ इक धूर्त याको मिलो।
विष्णुमित्र परिव्राजक दुष्ट, याको लखि बोलो बच मिष्ट।।28।।
मम वच सुन तू पुत्र अबार, अब ही चलियो मेरी लार।
अटवी में परबल है कूप, ताको जान रसायन रूप।।29।।
सो तोकू मैं देहूं अबै, जाकर पारिद नाशे सबै।
ताके वच सुन याने कही, वेग तात दिखलाओ सही।।30।।
धन लोभी प्राणी जग मांहि, दुरजन पास ठगाओं जाहिं।
विष्णुमित्रा दण्डी तिहवार, याको लेय गयो निज लार।।31।।
भूभ्रत यह वह कूप दिखाय, इक तूम्बी इस कर में दाय।
छींके में बैठाय उतार, रस्सी पकड़ गयो जहाँ वार।।32।।
तहाँ एक थो बहु दुख लीन, ताने याकूँ मने सु कीन।
चारुदत्त पूछी तू कौन, क्यों यहाँ पड़ो कहाँ तुझ भौन।।33।।

दोहा

कूप विषय को मनुष्य तब, बोले वच तिह ठाम।
उज्जैनी नगरी रहूँ, धनदत्त वणिक है नाम।।34।।
सो हम संगलद्वीप को, गये करन व्योपार।
आवत मो प्रोहण फटो, मैं बच आयो पार।।35।।
इस परिव्राजक दुष्ट नें, एही लोभ दिखाय।
तूंबी देकर कूप में, दियो मोय उतराय।।36।।
तब मैं तूम्बी रस भरो, लीनों वाने खींच।
दूजीबार मोहि काढ़ते, काट दिया अधबीच।।37।।
सो मैं अन्धे कूप में, पड़ो महा दुख लीन।
रस पीवत काया गली, होहि प्राण अब छीन।।38।।

काव्य

ऐसे सुनकर चारुदत्त इस गिरा सुनाई।
क्या रस तूम्बी इसे अबै देहों नहिं भाई।।
तब बाने इमि कही अबै जो रस नहिं देगो।
फेकूँगो पाखान पड़ो यहाँ दुःख सहेगो।।39।।
ऐसे सुनकर चारुदत्त कीनी चतुराई।
तुम्बी रस को भरो तासको दिया खिंडाई।।
सो उन खेंचो वेग फेर रस्सी लटकाई।
चारुदत्त पाखान तास में दिये बंधाई।।40।।

दोहा

आप कूप में जतनते, तिष्ठो चिंतावान।
परिव्राजक रस्सा तबे, काटो जुत पाखान।।41।।
जात भयो निज धामको, ले रस बहु सुखदाय।
कूप विषय के पुरख ते, चारुदत्त बतलाय।।42।।

पद्धडी

हो भ्रात अबे मोको बताय, कोई भी जीवन को है उपाय।
जो मोहि बतावे तू अबार, तो मैं तोहि देहूं धर्म सार।43।।

इम कहकर शुभ नवकार मन्त्र, सुर शिवदायक दीनो तुरन्त।
सन्यास तनी विधको बताय, ताने गह लीनी चित लगाय।।44।।
तब चारुदत्तें इम कहंत, तुम पुरुष विलक्षण बुद्धिवन्त।
या रस पीवन इक गोह आत, अब तो गई आवेगी प्रभात।।45।।
ताकी तुम पूंछ गहो महान, ताकर बाहर निकसो सुजान।
ऐसी सुनकर तब चारुदत्त, गुण उज्वल चितधारी पवित्त।।46।।
सो गोह पूंछ गाढ़ी गहाय, बाहर निकसो छिलगई काय।
अटवी में पहुँचो दुःख लीन, इच्छापूर्वक फिर गमन कीन।।47।।

चौपाई

याके तात तनो जो भाय, रुद्रदत्त तंह मिलो सो आय।
कहत भयो सुन पुत्र आवार, तुम चालो अब हमरी लार।।48।।
रतनद्वीप सोहे विख्यात, तहाँ चलें हम तुम मिल सात।
इम कहि धन लोभी अधिकाय, बकरे की तब पीठ चढ़ाय।।49।।
भूभृत मारग कीनों गौन, भाल लिखों सो मेटे कौन।
पहुँचे यह परवत के भाल, बोलो रुद्रदत्त विकराल।।50।।
अहो पुत्र तू अब सुन लेह, दोनों अज की हनिये देह।
तिनकी खाल विषय इहिवार, भीतर बेठे लेय कटार।।51।।
रतनद्वीप ते पक्षी आय, पल भक्षी भेरण्ड इहाँ आय।
सो हमको ले जावे सही, रतनद्वीप को पटके मही।।52।।
ऐसे पापरूप बच कहु, तो पणि चारुदत्त नहिं गहे।
सन्त जनन में भीड़ जु पड़े, तोपण दुराचारतें डरे।।53।।
रुद्रदत्त इह दुष्ट अयान, युग बकरे के नाशे प्रान।
जे अति दुष्ट निर्दयी चित्त, क्या क्या काज करें नहिं नित्त।।54।।
मरतो अज तिन देखो तबै, चारुदत्त इह कीनो जबै।
ताको मंत्र दियो नवकार, मरन समाधि करायो सार।।55।।
धरमी जनकी है यह रीत, पर उपकार करे यह नीत।
तब दोनों पैठें भांथड़ी, वे भेरुण्ड आय तिस घड़ी।।56।।
चोंच विषय धर चले तुरन्त, अंबुध ऊपर गमन करन्त।
और भेरुण्ड पहुँचे आय, इनसेती वे युद्ध कराय।।57।।

दोहा

रुद्रदत्त भांथड़ी, तजी भिरूण्ड तुरन्त।
सो वारिध में गिर मरो, खोटी योनि लहंत।।58।।
पापी शुभ गति नहिं लहे, इह भाषी भगवान।
जातें शुभ कारज करो, जो चाहो कल्यान।।59।।

सोरठा

चारुदत्त युत खाल, ले भेरूण्ड पहुँचत भयो।
रतनद्वीप तत्काल, रतनचूल परवत जहाँ।।60।।
लगो विदारन सोय, चारुदत्त निकसो तबै।
भागो खग यह जोय, चित्त में डर बहु धारिके।।61।।

दोहा

पुन्यवान जन जगत में, लहे सुख अधिकाय।
दुख दाता दुरजन जु हैं, हितकारी हो जाय।।62।।

पायता

तिस भूभृत सीस खरे हैं, आताप जोग धरे हैं।
ऐसे मुनि दीन दयालं, लख चारुदत्त तिह हालं।।63।।
तिनके चरनो ढिग आयो, बहु विधि से सीस नवाओ।
मुनि पूरन जो सु कीने, वच गये महा हित भीने।।64।।
हे चारुदत्त गुण मण्डित, तेरे हैं कुशल अखण्डित।
तिन वच सुन हर्ष सुधारो, फिर चारुदत्त उच्चारो।।65।।
हे मुनि! मैं दास तुम्हारो, मोकूं किस ठौर निहारो।
तब कहत भये सुनी ज्ञानी, तुम सुनो चतुर मम वानी।।66।।
मैं अमित खगेश्वर नामा, विजियाधर पै मम धामा।
इक दिन चित हर्ष उपायो, चंपानगरी ढिंग आयो।।67।।
शोभायुत कदली कानन, तिम लखकर फलो आनन।
संग नार वसन्तसिरी थी, ताजुत वां केल करीथी।।68।।
तहाँ धूमसिंह खग आयो, मो तिय लखि चित्त लुभायो।
अपनी विद्या परकाशी, मोहि कील दिया दुखरासी।।69।।

मेरी भामा हरलई जब ही, गयो अंवार माहीं तबही।
तबही मम पुन्य वसाये, तुम क्रीड़ा को तहँ आये।।70।।

दोहा

मैंने तुझको देखकर, करी समस्या येह।
त्रियगुटिका मम पास हैं, ताको तू अव लेह।।71।।
पीस लगा मम तन विषय, तो छूटूं तत्काल।
सो तुम सबही विधि करी, हे सुन्दर गुणमाल।।72।।

चौपाई

तब ही शल्य निकस मम गई, सब शरीर में साता भई।
जैसे गुरु की गिरा महान, सुनते असत तनी है हान।।73।।
फिर मैं अष्टापद गिरजाय, धूमसिंह ते जुद्ध कराय।
अपनी तिय लायो छुड़वाय, फिर तुझपै आयो हरषाय।।74।।
मैं तुझ थुत कर कही जु मित्त, वर मांगो जो चाहो चित्त।
तुमने कहि कछु मागूं नाहिं, सुखी भयो तुम दर्शन पाहि।।75।।
सतपुरुषन की है यह बान, कर उपकार न मांगे दान।
तिस पीछे मैं गयो तुरन्त, अपने धाम विषै हरषंत।।67।।
दक्षिण श्रेणी में शुभ ठाम, शिव मन्दिर नगरी अभिराम।
तामें राज कियो मैं वीर, बहुत दिनन तक साहस धीर।।77।।
फिर मेरे उपजी यह चित्त, है सब ही संसार अनित्त।
तब निज सुत लीने बुलवाय, नाम सिंह जसग्रीव वराय।।78।।
दोनों को देकर सब राज, मैं आयो वन में तप काज।
जो संसार उतारे पार, ऐसी जिनवर दीक्षा धार।।79।।
तप बल पाई चार ऋद्धि, गगन गामिनी जो पर सिद्ध।
अब तिष्ठूं इस परवत बीच, ध्यान धार नाशों अघ कीच।।80।।

दोहा

इह वृतांत सुन सेठ सुत, ह्वै खुशाल धीमान।
बहु थुति मुनिवर की करी, तिष्ठो ताही थान।।81।।

ताही छिन मुनिसुत जुगम, आये वन्दन हेतु।
चारुदत्त की सब कथा, तिनते कह जगसेत।।82।।

काव्य

अरु ताहि छिन मांहि एक चरसुर तहं आयो।
चारुदत्त के चरन कमल को शीश नवायो।।
सेठ पुत्र तब कही सुनो चरसुर गुनधारी।
नमन किया मोहि आय कहौ यह कौन विचारी।।83।।
विद्यमान गुरु पास होत हम कौनहि लायक।
तब चतुरोत्तम देव कहे सुनिये मुझ वायक।।
मोको बकरो जान हुतो परबत पै स्वामी।
रुद्रदत्त ने प्राण हने मैं दुख तंह पामी।।84।।
तुम दीनों नवकार मन्त्र सन्यास करायो।
ता प्रभाव कर प्रथम स्वर्ग में सुरपद पायो।।
इस कारनते आन चरन मैं बन्दे थारे।
शुभ मारग दरशाय दियो तुम गुरु हमारे।।85।।
ऐसे कहकर त्रिदश धरम अनुराग धार चित।
वस्त्राभूषन लाय चारुदत्त को पूजो नित।।
फेर नमन कर स्वर्ग गयो वह तिसही बारी।
सुर असुरन करि पूज होय जे पर उपकारी।।86।।

दोहा

तिस पीछे वे मुनि तनुज, गुरुको सीस नवाय।
वनिक पुत्र को संग ले, चम्पा नगरी आय।।87।।
रत्नादिक बहुत विधि दिये, चारुदत्त को सार।
नमस्कार करके तबै, गये सु निज आगार।।88।।

चौपाई

जे प्रानी हैं पुन्य निधान। तिनको दुर्लभ कुछ नहीं जान।।
सब ही है सुलभ सुखदाय। तातें धरम करो अधिकाय।।89।।

चार प्रकार दान नित करो। श्री जिनपूजन में चित्त धरो।।
वरत शील कल्याण निमित्त। बुद्धिमान मन धारे नित्त।।90।।
भानु सेठ शुभ जाको तात। भली सुभद्रा ताकी मात।।
तिनके सुत को आवत जान। भये खुशी पुरजन अधिकान।।91।।
चारुदत्त निज पुन्य बसाय। भोगे भोग महा सुखदाय।।
श्रीजिन भाषित धर्म अराधि। कियो विचार अब तजो उपाधि।।92।।
सुन्दर नामा सुत बुध धार। ताको निज पद दे तिहवार।।
आप धरी दीक्षा तत्काल। कर सन्यास मरण गुणमाल।।93।।
शल्य रहित है मन वच काय। स्वर्गलोक में बहु रिध पाय।।
नानाविधि के तहं शुभ भोग। भोगत भये पंचेन्द्री जोग।।94।।
मेरुसुदर्शन आदिक धाम। तहं यात्रा यह करे ललाम।।
अरु तीर्थंकर देव महान। समोशरनजुत ज्ञान निधान।।95।।
तिनकी वानी सुधा समान। ताको यह सुर करो सुपान।।
इत्यादिक है धर्म सुरक्त। सुखतें तिष्टे जिनवर भक्त।।96।।

सवैया इकतीसा

भागवत धरम सार संतजन हिये धार,
ताको धरो बार बार हितकारी जाने के।
देव इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र खगधीश नर,
सेवें इसही को सब भक्ति हिये ठनके।।97।।
महा जो पवित्र येह स्वर्ग मोक्ष सुख देह,
याहिसों करो सनेह सर्म गेह मानके।
सोई धर्म नित प्रति मंगल करो सदीव,
ब्रह्म नेमीदत्त कही कथा भ्रम भानके।।98।।

दोहा

चारुदत्त वर सेठ की, कही कथा इह सार।।
भव्य जीव बांचो सुनो, करो, सु पर उपकार।।99।।

।। चारुदत्त चरित्र समाप्त ।।